MSK 002 व्याकरण

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

खंड

6

कृदन्त प्रकरण

इकाई 23

कृदन्त प्रकरण – कृत्य प्रक्रिया

इकाई 24

पूर्वकृदन्त प्रकरण (प्रथम भाग) (ण्वुल्तृचौ से मनः सूत्र तक)

इकाई 25

पूर्वकृदन्त प्रकरण (द्वितीय भाग) (आत्ममाने खश्च से म्वोश्च सूत्र तक)

इकाई 26

पूर्वकृदन्त प्रकरण (तृतीय भाग) (लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे से पुवः संज्ञायाम् सूत्र तक)

खंड 6 का परिचय

प्रिय शिक्षार्थियो, एम.ए. (संस्कृत) कार्यक्रम के द्वितीय पाठ्यक्रम 'व्याकरण' के प्रस्तुत खंड में आप कृदन्त प्रकरण का अध्ययन करेंगे। कृदन्त प्रत्ययों का प्रयोग प्रातिपादिक (शब्द) बनाने के लिए सर्वप्रथम धातुओं से कृत् प्रत्यय किए जाते हैं; अतः कृदन्तों के सम्यक् ज्ञान के बिना व्याकरण की पर्याप्त जानकारी प्राप्त नहीं होती है। इस खंड में चार इकाइयां समाहित हैं, जिनमें कृत्य प्रत्ययों का परिचय तथा भाग 1, 2, एवं 3 के अन्तर्गत आप ण्वुलतृचौ से पुवः संज्ञायाम् तक आने वाले सूत्रों और उनकी प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त करेंगे। सूत्रों के अर्थ, वृत्ति, पदविश्लेषण के साथ–साथ उत्सर्ग–अपवाद नियम भी दिए गए हैं। खंड में इकाइयों की संयोजना इस प्रकार है :

इकाई 23 : कृदन्त प्रकरण – कृत्य प्रत्यय

इकाई 24 : पूर्वकृदन्त – भाग 1 (ण्वुल्तृचौ – मनः सूत्र तक)

इकाई 25 : पूर्वकृदन्त – भाग 2 (आत्ममाने खश्च – म्वोश्च सूत्र तक)

इकाई 26 : पूर्वकृदन्त – भाग 3 (लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे – पुवः संज्ञायाम् सूत्र तक)

आशा है आप इस खंड के अध्ययन के उपरान्त कृत् प्रत्ययों एवं उनके प्रयोग से बनने वाले रूपों को भली–भांति जान जाएंगे और यथास्थान उनका प्रयोग करने में सक्षम होंगे।

शुभकामनाओं सहित।

इकाई 23 कृदन्त प्रकरण – कृत्य प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त शिक्षार्थी–

- धातोः सूत्र से लेकर कृत्य प्रकरण की समाप्ति तक के अध्ययन के माध्यम से सूत्र, सूत्रार्थ एवं उदाहरणों से परिचित हो सकेंगे।
- कृत्य प्रक्रिया के अन्तर्गत विहित प्रत्ययों का परिचय प्राप्त करेंगे।
- कृत् एवं कृत्य प्रत्ययों के अन्तर और संख्या को जान सकेंगे।
- कृत्य प्रत्ययों का विधान किन अर्थों में होता हैं? यह भी जान सकेंगे।
- साथ ही साथ उन प्रत्ययों की सहायता से निर्मित होने वाले पदों का ज्ञान तथा व्यवहार में इनका यथोचित प्रयोग करने में निपुणता प्राप्त कर सकेंगे।
- लघुसिद्धान्तकौमुदी के पूर्व–कृदन्त प्रकरण के अन्तर्गत आने वाले कृत्य–प्रत्ययों से सम्बन्धित प्रक्रिया (रूपसिद्धि) को समझ सकेंगे; तथा उन्हें
- उत्सर्ग–अपवाद नियम को और अच्छी प्रकार से समझने में सरलता होगी।

23.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व हम लघुसिद्धान्तकौमुदी के संज्ञा, सन्धि, सुबन्त तथा तिङन्त (ण्यन्तादि प्रक्रिया सहित) आदि प्रकरणों का भली भाँति अध्ययन कर चुके हैं। इस इकाई सहित आगे

की कुल चार इकाईयों में हम कृदन्त प्रकरण (पूर्व–कृदन्त) का अध्ययन करेंगे। सबसे पहले इस इकाई में हम कृत्य प्रत्ययों की चर्चा करने जा रहे हैं। इस चर्चा के माध्यम से हम कृत्य–प्रत्ययों के स्वरूप, धातुओं से इनका विधान तथा धातु व कृत्य–प्रत्ययों के संयोग से निष्पन्न प्रातिपदिक और इन प्रातिपदिकों एवं सुबादि प्रत्यय के संयोग से सिद्ध होने वाले कृदन्त पदों से परिचित हो सकेंगे।

23.2 प्रत्यय

प्रत्यय एक संज्ञा है। पाणिनि ने 'प्रत्यय 3/1/6' एवं 'परश्च 3/1/2' इन दो अधिकार सूत्रों की व्याप्ति पञ्चम अध्याय की परिसमाप्ति (निष्प्रतिवाणिश्च 5/4/160) तक रखी है। अतः इन दोनों अधिकार सूत्रों की व्याप्ति के फलस्वरूप 'गुप्तिज्किद्भ्यः सन् 3/2/5' से विहित 'सन्' से लेकर 'उरःप्रभृतिभ्यः कप् 5/4/151' (इस सूत्र में पठित कप् (एक प्रत्यय विशेष) 5/4/160 तक अन्वित होता है) से विहित 'कप्' तक की प्रत्यय संज्ञा होती है एवं 'परश्च 3/1/2' के अनुसार इन प्रत्ययों का विधान यथानिर्दिष्ट धातु अथवा प्रातिपदिक के बाद होता है।

लघुसिद्धान्तकौमुदी में वरदराजाचार्य ने कृदन्त प्रकरण को तिङन्त प्रकरण के बाद रखा है। संस्कृत भाषिक परम्परा में प्राप्त पदों (शब्दों) को व्याकरण की पद्धति के अनुसार दो प्रकार से विभक्त किया गया है – जिसे हम सुबन्त तथा तिङन्त के नाम से जानते हैं।

सुबन्त – सुप् एक प्रत्याहार है। इस प्रत्याहार के अन्तर्गत सु से लेकर सुप् तक आने वाले 21 प्रत्यय विद्यमान माने जाते हैं। ये सुबादि 21 प्रत्यय जिन प्रातिपदिकों के अन्त में प्रयुक्त होते हैं वे पद सुबन्त कहलाते हैं। ध्यातव्य है कि ये सुबादि प्रत्यय प्रातिपदिकों से विहित होते हैं।

तिङन्त – तिङ् एक प्रत्याहार है। इसमें तिप् से लेकर महिङ् तक 18 प्रत्यय परिगणित हैं। ये प्रत्यय धातुओं से विहित लकारों के स्थान पर होते हैं। ये तिङादि 18 प्रत्यय जिनके अन्त में हो वे पद तिङन्त कहलाते हैं। ये तिङादि प्रत्यय धातु से विहित होते हैं।

अब यहाँ हमें यह विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि धातु से विहित होने वाले प्रत्ययों के साथ ही कृत् प्रत्ययों का प्रयोग भी धातु से ही किया जाता है। अर्थात् धातु से विहित होने वाले प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं – 1. तिङ्, एवं 2. कृत्। जब धातु से तिङ् प्रत्यय का विधान होकर रूप बनता है तो वह साध्यमान क्रिया रूप कहलाता है तथा जब धातु से कृत् प्रत्यय विहित हो कर रूप बनता है तो वह सिद्ध क्रिया रूप कहलाता है।

वस्तुतः पाणिनीय व्याकरणिक परम्परा में कृत् प्रत्यय उन प्रत्ययों को कहा जाता हैं जिनकी कृदतिङ् 3/1/93 (अर्थात् धातु से विहित प्रत्ययों में तिङ् प्रत्ययों को छोड़कर शेष प्रत्ययों कृत् कहलाते हैं) से कृत्संज्ञा होती है। इन कृत्संज्ञक प्रत्ययों के अन्तर्गत ण्यत्, यत्, अण्, अच्, णमुल् आदि प्रत्यय आते हैं। इस प्रकार धातु से होने वाले प्रत्ययों में तिङ् प्रत्ययों के

अतिरिक्त अन्य सभी प्रत्यय कृत् प्रत्यय कहे जाते हैं। धातुओं से कृत् प्रत्यय किए जाने पर बनने वाला शब्द कृदन्त कहलाता है और उसकी कृत्तद्धितसमासाश्च 1/2/46 से प्रातिपदिक संज्ञा हो जाती है। भाषा में बहुधा तिङन्त क्रिया–पदों के प्रयोग के विना ही तिङन्त के स्थान पर कृदन्त–पदों का क्रिया के रूप में प्रयोग करके भाषिक व्यवहार सम्पन्न किया जाता है। कृदन्तों का क्रिया के रूप में इस प्रकार के प्रयोग के उदाहरण संस्कृत–साहित्य में अनेकत्र तथा भूरिशः समुपलब्ध होते हैं।

सम्पूर्ण कृदन्त–प्रकरण को लघुसिद्धान्तकौमुदी के अनुसार चार भागों में विभक्त किया जा सकता है – कृत्य, पूर्वकृदन्त, उणादि और उत्तरकृदन्त। कृत् – प्रत्ययों (संज्ञा) के अन्तर्गत ही कुछ विशेष प्रत्ययों की कृत्य संज्ञा होती है। उन प्रत्ययों का प्रकरण होने के कारण इस प्रकरण को कृत्य प्रकरण कहा जाता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि धातु से तिङ् और कृत् प्रत्यय होते हैं । तिङ् प्रकरण का विधान पहले इसलिए किया गया क्योंकि कृत् प्रत्यय का ज्ञान तिङ् प्रत्यय ज्ञान का पश्चाद्भावी है, क्योंकि 'कृदतिङ्' की व्यवस्था के अनुसार तिङ् भिन्न प्रत्ययों की ही कृत्संज्ञा होती है। अतः कृदन्त प्रकरण से पहले तिङन्त प्रकरण का होना स्वाभाविक ही है।

धातुओं से होने वाले प्रत्ययों में सबसे विशाल भण्डार है कृत् प्रत्ययों का। अष्टाध्यायी के तृतीय अध्याय में कुल 631 सूत्र हैं, इन सूत्रों के द्वारा विभिन्न धातुओं से अनेक अर्थों में बहुत सारे प्रत्यय विहित किये गये हैं। ये सभी धातु से विहित हैं, केवल नामधातु प्रत्यय सुबन्त से विहित हैं। धातु से विहित प्रत्यय प्रायः सवा सौ हैं और प्रत्ययों के अर्थ भी प्रायः इतने ही हैं। इनमें यदि तिङ् और सनादि प्रत्ययों को पृथक् कर दें तो प्रायः 100 प्रत्यय और 100 ही अर्थ रह जाते हैं। इन्हीं को कृत् कहते हैं। यहां यह कोई ऐसा विभाग नहीं है कि जहां एक प्रत्यय के लिए एक ही अर्थ निश्चित हो। बहुधा एक प्रत्यय के अनेक अर्थ और एक अर्थ में अनेक प्रत्यय भी प्राप्त होते हैं। उदाहरण के रूप में – भाव अर्थ में घञ् (पाकः), अच् (जयः), अप् (करः), क्तिन् (नीतिः) आदि अनेक प्रत्यय और चानश् प्रत्यय के एकाधिक अर्थ ताच्छील्य (भोगं भुञ्जानः), वयोविशेष (कवचं बिभ्राणः), शक्ति (शत्रून् निघ्नानः) आदि समुपलब्ध होते हैं।

कृत्–प्रत्ययों का विधान साधारणतः कर्ता अर्थ में किया गया है। इन कृत् संज्ञक प्रत्ययों के अन्तर्गत ही कुछ विशेष प्रत्ययों की कृत्य संज्ञा भी की जाती है। इस प्रकार इन कृत्य प्रत्ययों की दो–दो संज्ञाएं होती हैं – कृत् और कृत्य। यद्यपि कृत् प्रत्यय मुख्यतः कर्ता अर्थ में विहित हैं लेकिन कृत्य प्रत्यय सदा कर्ता से भिन्न भाव और कर्म अर्थ में होते हैं। साथ ही ये कृत्य और ल्युट् बहुल प्रकार से होते हैं, अतः वे कर्म और भाव से भिन्न स्थलों में भी हो सकते हैं।

कृत्य प्रत्यय के अन्तर्गत कुल सात (7) प्रत्यय आते हैं : 'तव्य, तव्यत्, अनीयर, केलिमर, यत्, क्यप् और ण्यत्'।

23.3 सूत्र, वृत्ति, सूत्रार्थ, उदाहरण, व्याख्या और रूपसिद्धि (धातोः सूत्र से लेकर भक्ष्य सूत्र तक)

सूत्र – धातोः 3/1/91

वृत्ति – आ तृतीयाध्यायसमाप्तेर्ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः। कृदतिङ् इति कृत्सञ्ज्ञा।

सूत्रार्थ – अष्टाध्यायी के तृतीयाध्याय के समाप्ति पर्यन्त जो प्रत्यय कहे गये हैं, वे धातु से परे हों।

व्याख्या – यह अधिकार सूत्र है। इस सूत्र में धातोः यह एक मात्र पद है तथा यह पञ्चमी एकवचनान्त है।

यहाँ से लेकर अष्टाध्यायी के तृतीय अध्याय की समाप्ति पर्यन्त जिन प्रत्ययों का वर्णन किया गया है, वे धातु से परे होंगे। अर्थात् तृतीय अध्याय के प्रथम पाद के 91वें सूत्र से लेकर तृतीय अध्याय के चतुर्थ पाद के अन्तिम सूत्र तक जो भी प्रत्यय हों वे धातु के बाद ही हों, ऐसा यह अधिकार सूत्र करता है।

धातु से होने वाले प्रत्यय दो प्रकार के हैं – प्रथम तिङ् और द्वितीय कृत्। तिङ् प्रत्ययों के अन्तर्गत 18 प्रत्यय हैं। तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस्, ता, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इड्, वहिङ् और महिङ्।

इनके अतिरिक्त धातु से होने वाले अन्य प्रत्ययों को कृदतिङ 3/1/93 इस सूत्र से तिङ् से भिन्न प्रत्ययों की कृत् संज्ञा होती है। अतः तिङ् के अतिरिक्त धातु से होने वाले प्रत्यय कृत् कहलाते हैं।

सूत्र – वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् 3/1/94

वृत्ति – अस्मिन् धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात् स्त्र्यधिकारोक्तं विना।

सूत्रार्थ – इस धात्वधिकार में असरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग का विकल्प से बाधक हो, स्त्र्यधिकार के प्रत्ययों को छोड़कर।

व्याख्या – यह परिभाषा सूत्र है। वा यह अव्यय पद है। असरूपः यह प्रथमा एकवचन का रूप है। अस्त्रियाम् यह सप्तमी एकवचन का रूप है।

इस धात्वधिकार में असमानरूप वाला अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग प्रत्यय का विकल्प से बाधक हो, परन्तु यह कार्य स्त्र्यधिकार के प्रत्ययों में लागू नहीं होता।

ध्यातव्य है कि पाणिनीय व्याकरण में सूत्र दो प्रकार के हैं; उत्सर्ग और अपवाद।

उत्सर्ग – जो सामान्य रूप से कार्य का विधान करते हैं, उन्हें उत्सर्ग कहते हैं।

अपवाद – जो विशेष रूप से कार्य करते हैं, उन्हें अपवाद कहते हैं।

व्याकरण शास्त्र का सामान्यतः नियम यह है कि उत्सर्ग का अपवाद नित्य बाधक होता है। यह नियम सर्वत्र लागू होता भी है। परन्तु यहाँ पर यह परिवर्तन हुआ कि अपवाद शास्त्र उत्सर्ग का विकल्प से बाधक होगा। अर्थात् एक बार उत्सर्ग शास्त्र की प्रवृत्ति होगी और दूसरी बार अपवाद शास्त्र की। परन्तु यह नियम असमानरूप वाले अपवाद शास्त्रों के साथ ही लागू होगा। अर्थात् इसमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि उत्सर्ग और अपवाद प्रत्ययों में समानता (एक जैसा) रूप नहीं होना चाहिए। क्योंकि उत्सर्ग और अपवाद में समानरूपता होने पर उत्सर्ग का अपवाद से नित्य बाध होकर केवल अपवाद शास्त्र की ही प्रवृत्ति होगी।

जैसे, धातोः के अधिकार में पढ़ा गया तव्यत् प्रत्यय उत्सर्ग शास्त्र से विहित है तथा यत् प्रत्यय उसका अपवाद है। तव्यत् प्रत्यय का शेष तव्य बचता है तथा यत् का शेष य रहता है। ये दोनों प्रत्यय असमानरूप (एक जैसा अर्थात् समान रूप नहीं हैं जिनका) वाले हैं, अतः एक ही धातु से तव्यत् तथा विकल्प से उसे बाध कर यत् प्रत्यय होता है। परन्तु यदि प्रत्यय समानरूप हो तो उत्सर्ग का अपवाद नित्य बाधक होता है। जैसे – यत् और ण्यत् इन दोनों प्रत्ययों में शेष य ही बचता है। अतः यह असमानरूप न हो कर समानरूप ही है। इसलिए यहाँ पर अचो यत् 3/197 सूत्र से विहित यत् का ऋहलोर्ण्यत् 3/2/124 इस सूत्र से होने वाला ण्यत् प्रत्यय नित्य बाधक होता है।

सूत्र – कृत्याः 3/1/95

वृत्ति – ण्वुल्तृचावित्यतः प्राक् कृत्यसंज्ञाः स्युः।

सूत्रार्थ – ण्वुल्तृचौ (3/1/133) से पहले तक कहे जाने वाले प्रत्यय कृत्य संज्ञक हों।

व्याख्या – यह संज्ञा अथवा अधिकार सूत्र है। कृत्याः यह प्रथमा बहुवचन का रूप है। ण्वुल्तृचौ 3/1/133) सूत्र से पहले जितने प्रत्यय कहे गये हैं, उनकी कृत्य संज्ञा होती है। इस प्रकार यह सूत्र कृत्य संज्ञा (कृत् संज्ञा के अन्तर्गत ही एक द्वितीय संज्ञा) के अधिकार का विधान करता है ।

कृत्य के अन्तर्गत सात प्रत्यय आते हैं। इन प्रकरण के सूत्रों के द्वारा 1. तव्यत्, 2. तव्य, 3. अनीयर् 4. यत्, 5. क्यप् और 6. ण्यत् प्रत्यय और वार्तिक के द्वारा 7. केलिमर प्रत्यय विहित होता है। इस प्रकार कृत्य प्रत्ययों की कुल संख्या 7 होती है। इन सात प्रत्ययों का एक कारिका में किया गया परिगणन अधोलिखित है :

तव्यञ्च तव्यतञ्ञ्चानीयरं केलिमरं तथा।
यतं ण्यतं क्यपं चौव सप्त कृत्यान् प्रचक्षते।।

सूत्र – कर्तरि कृत् 3/4/67

वृत्ति – कृत् प्रत्ययः कर्तरि स्यात्। इति प्राप्ते।

सूत्रार्थ – कृत् संज्ञक प्रत्यय कर्ता अर्थ में होते हैं।

व्याख्या – यह प्रत्यय के अर्थ का निर्धारण करने वाला विधि सूत्र है। कर्तरि यह सप्तमी एकवचन का रूप है। कृत् यह प्रथमा एकवचन का रूप है।

कृदन्त प्रकरण में जितने भी प्रत्यय होते हैं, वे सब किसी अर्थ विशेष को लेकर के ही होते हैं। अतः यहां यह ध्यातव्य रहे कि जो प्रत्यय जिस अर्थ में विहित होता है वह उस अर्थ का बोध कराता है। जैसे – कर्ता अर्थ में प्रत्यय होने का तात्पर्य है, कर्ता अर्थ का बोध कराना। सामान्यतः कृत् प्रत्यय कर्ता अर्थ में होता है यह व्यवस्था इस सूत्र से विहित होती है। कर्ता के अतिरिक्त जिन विशेष अर्थों में कृत् प्रत्यय होता है, उसका निर्देश अग्रिम सूत्रों में करेंगे।

सूत्र – तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3/4/70

वृत्ति– एते भावकर्मणोरेव स्युः।

सूत्रार्थ – कृत्यसंज्ञक प्रत्यय, क्त प्रत्यय तथा खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में ही होते हैं।

व्याख्या – यह प्रत्यय के अर्थ का निर्धारण करने वाला विधि सूत्र है। तयोः यह सप्तमी द्विवचन का रूप है। एव अव्यय पद है। कृत्यक्तखलर्थाः प्रथमा बहुवचन का पद है।

पूर्व सूत्र से कृत् प्रत्यय कर्ता अर्थ में विहित हो रहे हैं। कृत् संज्ञा के अन्तर्गत आने के कारण कृत्य प्रत्यय भी स्वाभाविक रूप से उसी कर्ता अर्थ में विहित हो रहे थे। इसके साथ ही पूर्व कृदन्त प्रकरण में आये हुये क्त तथा उत्तर कृदन्त प्रकरण में आये हुये खलर्थ प्रत्ययों का भी सामान्यतः कर्ता अर्थ में ही विधान प्राप्त था। यह सूत्र कृत्य प्रत्ययों (तव्यत् आदि), क्त और खलर्थ प्रत्ययों का कृत् संज्ञक होने के कारण सामान्यतः कर्ता अर्थ में प्राप्त विधान का बाध करके भाव और कर्म अर्थ में विहित होने का विशेष विधान करता है। खल् प्रत्यय जिस अर्थ में होता है, उसी अर्थ में होने वाले प्रत्ययों को खलर्थ प्रत्यय कहते हैं।

सूत्र – तव्यत्तव्यानीयरः 3/1/96

वृत्ति– धातोरेते प्रत्ययाः स्युः। भावे औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीबत्वं च।

सूत्रार्थ – धातु से परे तव्यत्, तव्य और अनीयर् प्रत्यय होते हैं। भाववाच्य में प्रत्यय विहित होने के कारण स्वाभाविक एकवचन और नपुंसकलिङ्ग होता है।

उदाहरण – एधितव्यम्, एधनीयं त्वया।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। तव्यत्तव्यानीयरः यह प्रथमा बहुवचन का रूप है। तव्यत् और अनीयर् के अन्त्य हल् वर्ण त् और र का हलन्त्यम् 1/3/3 से इत् संज्ञा हो कर तस्य लोपः1/3/9 से इत् संज्ञक वर्ण का लोप हो जाता है। अतः तव्य एवं अनीय ही शेष रहते हैं। तव्यत् और तव्य में अन्तर केवल इतना ही है कि एक तव्य तित् है और दूसरा नहीं। तित् करने का फल तित्स्वरितम् सूत्र से स्वरित स्वर का विधान है। अनीयर् में रेफ इत्संज्ञक है। इन तीनों प्रत्ययों के शित् न होने के कारण इनकी आर्धधातुकसंज्ञा होगी। आर्धधातुक प्रत्यय वलादि हो और धातु अनिट् न हो तो उस वलादि प्रत्यय को आर्धधातुकस्येड् वलादेः सूत्र से इट् का आगम भी होगा।

तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः के विधान से तव्यत्, तव्य और अनीयर् ये अकर्मक धातु से भाव और कर्म अर्थ में हुए हैं। भाव अर्थ में स्वाभाविक रूप से नपुंसकलिंग और एकवचन ही होता है। धातु के अर्थ क्रिया मात्र को भाव कहते हैं। भाव न तो स्त्रीलिंग होता और न ही पुल्लिंग, अतः स्वाभाविक रूप से नपुंसकलिंग ही होगा। जिस क्रिया में कृत्य प्रत्यय लगा होगा है, उसका कर्ता अनुक्त होने के कारण तृतीया विभक्ति वाला हो जाता है।

रूपसिद्धि –

एधितव्यम् – अकर्मक एध (वृद्धौ) धातु के अनुनासिक अन्त्य अकार की इत् संज्ञा होकर शेष एध् से 'तव्यत्तव्यानीयरः' सूत्र से भाव अर्थ में तव्यत् अथवा तव्य प्रत्यय हुए। तव्यत् होने के पक्ष में तकार की 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत् संज्ञा तथा 'तस्य लोपः' सूत्र से लोप होकर एध्+तव्य बना। तव्य प्रत्यय तिङ् और शित् प्रत्यय से भिन्न धातु विहित प्रत्यय है अतः 'आर्धधातुकं शेषः' सूत्र से उसकी आर्धधातुक संज्ञा हुई। इस संज्ञा के फलस्वरूप 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' सूत्र से तव्य को इट् का आगम हुआ। इट् में अन्त्य टकार की इत् संज्ञा एवं लोप हुआ। शेष इकार के टित् होने के कारण 'आद्यन्तौ टकितौ' परिभाषा सूत्र की सहायता से तव्य प्रत्यय के आदि में बैठा। एध्+इ+तव्य इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन होकर एधितव्य बना। तव्य प्रत्यय कृत् प्रत्यय है, अतः एधितव्य यह शब्द कृदन्त हुआ। कृदन्त होने के कारण इसकी 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा हुई और प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आयी। तव्यत् प्रत्यय के भाव अर्थ में होने के कारण स्वाभाविक नपुंसकलिङ्ग होता है। एधितव्य़सु इस स्थिति में 'अतोऽम्' सूत्र से सु के स्थान पर अम् आदेश हो कर एधितव्य +अम् बना। इसके बाद 'अमि पूर्वः' सूत्र से अम् के आदि अकार तथा एधितव्य के अन्त्य अकार के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होकर एधितव्यम् इस रूप की सिद्धि हुई।

एधनीयम् – यहाँ पर भी एध् धातु से परे 'तव्यत्तव्यानीयरः' सूत्र से भाव अर्थ में अनीयर् प्रत्यय हुआ। अनीयर् का अन्त्य रकार इत् संज्ञक है। एध्+अनीय इस अवस्था में वर्ण–सम्मेलन करके कृदन्त होने के कारण प्रातिपदिक संज्ञा तथा भाव अर्थ में नपुंसकलिङ्ग एकवचन में सु प्रत्यय हो कर एधनीय +सु बना। इस स्थिति में 'अतोऽम्' सूत्र से सु के स्थान पर अम् आदेश हो कर एधनीय +अम् बना। इसके बाद 'अमि पूर्वः' सूत्र से अम् के आदि अकार तथा

एधनीय के अन्त्य अकार के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होकर एधनीयम् इस रूप की सिद्धि हुई।

वार्तिक – केलिमर उपसंख्यानम्।

अर्थ – धातु से केलिमर् प्रत्यय भी होता है

उदाहरण – पचेलिमा माषाः, भिदेलिमाः सरलाः।

व्याख्या – धातु से केलिमर् प्रत्यय भी होता है। अतः तव्यत्तव्यानीयरः इस सूत्र में केलिमर् प्रत्यय भी जोड़ना चाहिए। अर्थात् केलिमर् यह कृत्य प्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में ही होता है।

पचेलिमाः – पच् धातु से परे 'केलिमर् उपसंख्यानम्' वार्तिक से केलिमर् प्रत्यय हुआ। पच्केलिमर् इस स्थिति में प्रत्ययस्थ अन्त्य रकार का अनुबन्ध लोप तथा आदि ककार की 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से इत् संज्ञा तथा 'तस्य लोपः' सूत्र से इत् संज्ञक ककार का लोप हो कर पच्+एलिम बना। वर्ण–सम्मेलन करके पचेलिम इस स्थिति में प्रातिपदिक संज्ञा तथा माषाः का विशेषण होने के कारण प्रथमा बहुवचन में जस् विभक्ति आई। विभक्ति सम्बन्धी अन्य कार्य होकर पचेलिमाः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – कृत्यल्युटो बहुलम् 3/3/113

वृत्ति –क्वचित् प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद् विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति।।

सूत्रार्थ – कृत्यसंज्ञक प्रत्यय और ल्युट् प्रत्यय बहुल से होते हैं।

उदाहरण – स्नात्यनेनेति स्नानीयं चूर्णम्। दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः।

व्याख्या – कृत्यल्युटः यह प्रथमा बहुवचन का पद है। बहुलम् प्रथमा एकवचन का पद है।

बहुल –

सूत्रों के विधान को भिन्न–भिन्न प्रकार वाला समझ कर वैयाकरण 'बहुल' के चार प्रकार कहते हैं : (1) कहीं प्रवृत्त हो जाना, (2) कहीं प्रवृत्त न होना, (3) कहीं विकल्प से प्रवृत्त होना, (4) और कहीं कुछ और ही हो जाना। कुछ और होने का तात्पर्य यह है कि निर्धारित योग्यता के अतिरिक्त भी कुछ और ही विधान होता है।

इन दोनों उदाहरणों में कृत्य संज्ञक अनीयर् प्रत्यय हुआ है। पहले यह बताया जा चुका है कि कृत्य प्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में ही होते हैं। परन्तु कृत्यल्युटो बहुलम् सूत्र में बहुल का प्रयोग होने के कारण कृत्य प्रत्ययों का विधान अन्य अर्थों में भी सम्भव हो जाता है। इसी

कारण स्नानीयम् में अनीयर् करण अर्थ में हुआ तथा दानीयः में इस प्रत्यय का विधान सम्प्रदान अर्थ में हुआ है।

स्नानीयम् – स्ना धातु से 'तव्यत्तव्यानीयरः' सूत्र से भाव अथवा कर्म अर्थ में तव्यत्, तव्य एवं अनीयर् प्रत्यय प्राप्त थे जिन्हें बाध कर 'कृत्यल्युटो बहुलम्' सूत्र के बहुल का आश्रयण करके भाव एवं कर्म अर्थ से भिन्न करण अर्थ में अनीयर् प्रत्यय हुआ। स्ना+अनीयर् इस स्थिति में 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से दीर्घ होकर स्नानीय बना। तत्पश्चात् प्रातिपदिक संज्ञा एवं स्वादि उत्पत्ति हुई। स्नानीय+सु इस स्थिति में विभक्ति सम्बन्धी अन्य कार्य होने से स्नानीयम् यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – अचो यत् 3/1/97

वृत्ति – अजन्ताद्धातोर्यत् स्यात्।

सूत्रार्थ – अजन्त धातु से यत् प्रत्यय होता है।

उदाहरण – चेयम्।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में अचः पञ्चमी एकवचन का पद है। यत् यह प्रथमा एकवचन का पद है। यत् के अन्तिम हल् वर्ण तकार का भी इत् संज्ञा हो कर लोप हो जाता है। इस कार्य को संक्षेप में अनुबन्धलोप भी कहते है। यत् में शेष य ही बचता है। यह भाव और कर्म अर्थ में हुआ है। जिन धातुओं के अन्त में अच् प्रत्याहार में आने वाले वर्ण हों उन्हें अजन्त धातु कहते हैं।

चेयम् – चि धातु से परे 'अचो यत्' सूत्र से यत् प्रत्यय हुआ। चि+यत् इस स्थिति में यत् प्रत्यय की तिङ् और शित् से भिन्न तथा धातु से विहित प्रत्यय होने के कारण 'आर्धधातुकं शेषः' सूत्र से आर्धधातुक संज्ञा हुई। आर्धधातुक प्रत्यय यत् के परे रहते 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से इगन्त अङ्ग चि के इकार के स्थान पर गुण अर्थात् एकार आदेश होकर चेयत् बना। यत् के अन्त्य तकार की इत् संज्ञा एवं अनुबन्ध लोप हो कर चेय बना। चेय यह कृदन्त है अतः कृदन्त होने के कारण 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा तथा नपुंसकलिङ्ग प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय हुआ। चेय +सु इस स्थिति में विभक्ति सम्बन्धी अन्य कार्य होकर चेयम् यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – ईद्यति 6/4/65

वृत्ति – यति परे आत ईत् स्यात्। देयम्।

सूत्रार्थ – यत् प्रत्यय परे रहते धातु के अन्त में विद्यमान आकार के स्थान पर ईकार होता है।

उदाहरण – ग्लेयम्।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। ईत् यह प्रथमा एकवचन का पद है। यति यह सप्तमी एकवचन का रूप है। ईत् में तपरकरण ईकार मात्र के ग्रहण के लिए किया गया है।

देयम् – आकारान्त दा धातु से परे 'अचो यत्' सूत्र से यत् प्रत्यय हुआ। दा+यत् इस स्थिति में यत् के अन्त्य तकार का अनुबन्धलोप होकर दाय बना। 'ईद्यति' सूत्र से यत् प्रत्यय परे रहने पर दा धातु के आकार के स्थान पर ईकार आदेश हुआ। दी+य इस स्थिति में यत् प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होने के बाद उससे पूर्व के इगन्त अङ्ग दी के ईकार को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से गुण एकार आदेश होकर देय बना। तत्पश्चात् प्रातिपदिक संज्ञा तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर देयम् यह रूप सिद्ध हुआ।

पेयम् – पीने के अर्थ में पा पाने धातु है, पा धातु से देयम् की तरह पेयम् बना।

सूत्र – पोरदुपधात् 3/1/98

वृत्ति – पवर्गान्तादुपधाद्यत् स्यात्। ण्यतोऽपवादः।

सूत्रार्थ – पवर्ग (प, फ, ब, भ, म) हो अन्त में और ह्रस्व अकार हो उपधा में जिस धातु के उससे यत् प्रत्यय होता है।

उदाहरण – शप्यम्। लभ्यम्।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में पोः एवं अदुपधात् दोनों पञ्चमी एकवचन के रूप हैं। यह सूत्र प्राप्त ण्यत् प्रत्यय का अपवाद करता है। ऋहलोर्ण्यत् के अनुसार ऋवर्णान्त एवं व्यञ्जनान्त धातुओं से ण्यत् प्रत्यय होता है। इस प्रकार किसी भी व्यञ्जनान्त धातु से प्राप्त ण्यत् का अपवाद करते हुए यह सूत्र कहता है कि अन्तिम व्यञ्जन यदि पवर्ग का हो और उससे पूर्व (उपधा में) ह्रस्व अकार हो तो यत् प्रत्यय ही होगा।

शप्यम् – शप् धातु हलन्त अर्थात् व्यञ्जनान्त है अतः यहां 'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र से ण्यत् प्रत्यय प्राप्त था। इसका बाध करके इस अपवाद सूत्र 'पोरदुपधात्' से यत् प्रत्यय हुआ। शप्+यत् इस स्थिति में तकार का अनुबन्धलोप तथा कृदन्त होने के कारण प्रातिपदिक संज्ञा एवं नपुंसकलिङ्ग में विभक्ति सम्बन्धी कार्य होकर शप्यम् यह रूप सिद्ध हुआ।

लभ्यम् – लभ् (डुलभष् प्राप्तौ) धातु में अनुबन्धलोप होने के बाद यत् प्रत्यय करके शप्यम् की तरह लभ्यम् बना।

सूत्र – एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् 3/1/109

वृत्ति – एभ्यः क्यप् स्यात्।

सूत्रार्थ – इण्, स्तु, शास्, वृ, दृ और जुष् धातुओं से क्यप् प्रत्यय होता है।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में एतिस्तुशास्वृदृजुषः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। क्यप् यह प्रथमा एकवचन का रूप है। क्यप् प्रत्यय में भी शेष य बचता है। अन्त्य हल् वर्ण का इस संज्ञा और लोप कैसे होता है यह पूर्व में वर्णित है। प्रत्यय के आदि में स्थित क वर्ण की इत् संज्ञा लशक्वतद्धिते 1/3/8 से होती है तथा इत् संज्ञक वर्ण का पूर्ववत् लोप होकर य शेष रहता है।

सूत्र – ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6/1/71

सूत्रार्थ – पित् कृत् के परे रहते ह्रस्व वर्ण को तुक् का आगम होता है।

उदाहरण – इत्यः। स्तुत्यः।

व्याख्या – यह आगम विधायक विधि सूत्र है। ह्रस्वस्य यह षष्ठी एकवचन का पद है। पिति एवं कृति ये दोनों सप्तमी एकवचन के पद हैं। तुक् यह प्रथमा एकवचन का रूप है। तुक् में त् शेष रहता है। उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1/3/2 इस सूत्र से इत् संज्ञा होती है तथा इत् संज्ञक वर्ण उकार का लोप एवं अन्त्य हल् वर्ण ककार का भी लोप होने से त् शेष बचता है। कित् होने के कारण आद्यन्तौ टकितौ इस परिभाषा सूत्र से अन्तावयव होकर तकार बैठेगा।

इत्यः – इण् (इ) धातु का अन्त्य णकार इत्संज्ञक है। अतः इ धातु को अजन्त होने के कारण 'अचो यत्' सूत्र से यत् प्रत्यय प्राप्त था जिसे बाध कर 'एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्' इस अपवाद सूत्र से क्यप् प्रत्यय हुआ। इक्यप् इस स्थिति में प्रत्यय का अन्त्य पकार तथा आदि ककार की इत् संज्ञा एवं लोप हुआ। इय इस स्थिति में क्यप् प्रत्यय सम्बन्धी यकार पित् कृत् प्रत्यय है अतः 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' सूत्र से पित् कृत् प्रत्यय परे रहते ह्रस्व वर्ण अर्थात् धातु के इकार को तुक् का आगम हुआ। तुक् में ककार इत् संज्ञक है अतः 'आद्यन्तौ टकितौ' इस परिभाषा सूत्र की सहायता से तुक्+इ धातु का अन्तावयव बना। इ+तुक्+य इस अवस्था में उकार तथा ककार का अनुबन्ध लोप हुआ। इत्य इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन होकर प्रातिपदिक संज्ञा हुई। प्रातिपदिक संज्ञा होने से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय हुआ तथा तत्सम्बन्धी कार्य होने से इत्यः यह रूप सिद्ध हुआ।

स्तुत्यः – ष्टुञ् स्तुतौ, स्तु धातु से भी इसी तरह क्यप्, तुक्, सु, रूत्वविसर्ग करके स्तुत्यः रूप बनता है।

सूत्र – शास इदङ्हलोः 6/4/34

वृत्ति – शास उपधाया इत्स्यादङि हलादौ क्ङिति।

सूत्रार्थ – अङ् परे रहते अथवा हलादि कित् वा ङित् परे रहते शास् धातु की उपधा के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश होता है।

उदाहरण – शिष्यः। वृत्यः। आदृत्यः। जुष्यः।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। शासः यह षष्ठी एकवचन का पद है। इत् यह प्रथमा एकवचन का पद है। अङ्हलोः यह सप्तमी द्विवचन का पद है। शास् धातु हलन्त होने के कारण ण्यत् प्रत्यय प्राप्त था जिसे बाध कर उसका अपवाद सूत्र 'एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्' से क्यप् प्रत्यय हुआ।

शिष्यः – शास् धातु से 'एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्' से क्यप् प्रत्यय होता है। अब शास्+क्यप् इस स्थिति में प्रत्ययस्थ ककार तथा पकार का अनुबन्धलोप हुआ। पुनः शास्+य इस स्थिति में प्रत्यय का शेष बचा भाग यकार हलादि कित् प्रत्यय है अतः 'शास इदङ्हलोः' सूत्र से हलादि कित् अर्थात् क्यप् प्रत्यय सम्बन्धी यकार परे रहते शास् के उपधा में स्थित आकार के स्थान पर इकार आदेश हुआ। श्+इ+स्+य इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन होकर शिस्य बना। 'शासिवसिघसीनां च' सूत्र से इकार से परे दन्त्य सकार को मूर्धन्य षकार आदेश होकर शिष्य बना। तत्पश्चात् कृदन्त होने से प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्रातिपदिक होने से विभक्ति उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर शिष्यः यह रूप सिद्ध हुआ।

वृ से क्यप् और तुक् करके वृत्यः, आ पूर्वक 'दृ' से आदृत्यः बना। जुष् से क्यप् होकर जुष्यः बनता है।

सूत्र – मृजेर्विभाषा 3/1/113

वृत्ति – मृजेः क्यब्वा।

सूत्रार्थ – मृज् धातु से क्यप् प्रत्यय विकल्प से होता है।

उदाहरण – मृज्यः।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। मृजेः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। विभाषा यह प्रथमा एकवचन का पद है। क्यप् में ककार तथा पकार का अनुबन्ध लोप होने पर य शेष रहता है। कित् होने के कारण क्ङिति च से लघूपधगुण नहीं होता है।

मृज्यः – मृज् धातु से परे 'मृजेर्विभाषा' सूत्र से क्यप् प्रत्यय विकल्प से हुआ। मृज्+क्यप् इस स्थिति में अनुबन्ध लोप तथा विभक्ति सम्बन्धी अन्य कार्य होकर मृज्यः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – ऋहलोर्ण्यत् 3/1/124

वृत्ति – ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत्।

सूत्रार्थ – ऋवर्ण हो जिनके अन्त में तथा व्यञ्जनवर्ण (हल् वर्ण) हो जिनके अन्त में ऐसे धातुओं से ण्यत् प्रत्यय होता है।

उदाहरण – कार्यम्। हार्यम्। धार्यम्।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। ऋहलोः यह पञ्चमी के अर्थ में षष्ठी एकवचन का पद है। ण्यत् यह प्रथमा एकवचन का पद है। ण्यत् प्रत्यय में भी यकार ही शेष रहता है। अन्त्य तकार की इत् संज्ञा एवं लोप पूर्ववत् समझना चाहिए। आदि मे स्थित ण् की इत् संज्ञा चुटु 1/3/7 इस सूत्र से हुई। तत्पश्चात् इत्संज्ञक णकार का लोप होने से य शेष बचा।

कार्यम् – कृ धातु के ऋवर्णान्त होने के कारण 'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र से ण्यत् प्रत्यय हुआ। कृ +ण्यत् इस अवस्था में प्रत्ययस्थ णकार एवं तकार का अनुबन्धलोप हुआ। कृ+य इस स्थिति में प्रत्यय के यकार के णित् होने के कारण 'अचो ञ्णिति' सूत्र से णित् प्रत्यय परे रहते अजन्त अङ्ग सम्बन्धी कृ के ऋकार को वृद्धि 'उरण रपरः' सूत्र की सहायता से रपर होकर आर् हुई। क्+आर्+य इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन होकर कार्य बना। तत्पश्चात् प्रातिपदिक संज्ञा, सु विभक्ति, अमादेश, पूर्वरूप एकादेश एकादेश होकर कार्यम् यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – चजोः कु घिण्यतोः 7/3/52

वृत्ति – चजोः कुत्वं स्याद् घिति ण्यति च परे।

सूत्रार्थ – घित् अथवा ण्यत् प्रत्यय परे रहते चकार और जकार के स्थान पर कवर्ग (क और ग) आदेश होता है।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। चजोः यह षष्ठी एकवचन का पद है। कु यह प्रथमा एकवचन का पद है। घिण्ण्यतोः यह सप्तमी द्विवचन का रूप है।

सूत्र – मृजेर्वृद्धिः 7/2/114

वृत्ति – मृजेरिको वृद्धिः सार्वधातुकार्धधातुकयोः।

सूत्रार्थ – सार्वधातुक और आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते मृज् धातु के इक् (ऋ) को वृद्धि होती है।

उदाहरण – मार्ग्यः।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में मृजेः यह षष्ठी एकवचन का पद है। वृद्धिः यह प्रथमा एकवचन का पद है।

सार्वधातुक संज्ञा – धातु से विहित होने वाले प्रत्ययों की (1) सार्वधातुक अथवा (2) आर्धधातुक इन दोनों में से कोई एक संज्ञा अवश्य होती है और इन संज्ञाओं का कुछ विशेष फल भी होता है।

(१) तिङ्–शित्–सार्वधातुकम् 3/4/003 इस सूत्र से धातु से विहित तिङ् (तिप् तसादि 18 प्रत्यय) और शित् (शकार की इत् संज्ञा हुई हो जिन प्रत्ययों में) प्रत्यय सार्वधातुक संज्ञक होते हैं।

(२) आर्धधातुकं शेषः 3/4/14 सूत्र के द्वारा धातु से विहित होने वाले तथा तिङ् और शित् से भिन्न जो प्रत्यय उनकी आर्धधातुक संज्ञा होती है।

यह पूर्व में ही स्पष्ट हो चुका है कि कृत् प्रत्यय वे प्रत्यय हैं जो धातु से विहित तो होते हैं परन्तु तिङ् से भिन्न ही होते हैं। अतः कृदन्तप्रकरण में जो कृत् प्रत्यय शित् हैं उनकी सार्वधातुक संज्ञा तथा उससे अतिरिक्त अन्य सभी प्रत्ययों की आर्धधातुक संज्ञा होती है।

मार्ग्यः – 'मृजेर्विभाषा' सूत्र के द्वारा मृज् धातु से परे जब पक्ष में क्यप् प्रत्यय नहीं होगा तो उस पक्ष में हलन्त धातु होने के कारण 'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र से ण्यत् प्रत्यय हुआ। मृज्+ण्यत् इस अवस्था में णकार का अनुबन्धलोप हुआ तथा धातु से विहित तथा तिङ् व शित् से भिन्न प्रत्यय होने के कारण उसकी आर्धधातुक संज्ञा भी हुई। मृज़्य इस स्थिति में 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' सूत्र से ण्यत् प्रत्यय के परे रहते जकार के स्थान में कवर्ग का सदृशतम वर्ण गकार हुआ। मृग़्य इस अवस्था में 'उरण रपरः' सूत्र की सहायता से 'मृजेर्वृद्धिः' सूत्र से मृग् के ऋकार को वृद्धि आर् हुई। म्+आर्+ग्+य इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन होकर मार्ग्य बना। तत्पश्चात् प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति सम्बन्धी कार्य होने से मार्ग्यः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – भक्ष्ये 7/3/69

वृत्ति – भोग्यमन्यत्।

सूत्रार्थ – भक्ष्य (खाने योग्य) अर्थ में भुज् धातु से भोज्य इस शब्द का निपातन होता है।

उदाहरण – भोज्यम्

व्याख्या – यह निपातनात्मक विधि सूत्र है। इस सूत्र में भोज्यं यह प्रथमा एकवचन का पद है। भक्ष्ये यह सप्तमी एकवचन का पद है।

23.4 सारांश

कृदन्त के अन्तर्गत आने वाले कृत्य प्रकरण नामक इस इकाई में हमने 'तव्य, तव्यत्, अनीयर्, केलिमर, यत्, क्यप् और ण्यत्' इन सात प्रत्ययों का अध्ययन किया। ये सातों प्रत्यय कृदतिङ् इस अधिकार में पढ़े जाने के कारण कृत् संज्ञक कहलाते हैं। पुनः कृत्याः के अधिकार में भी पढ़े जाने से कृत्य संज्ञक भी हो जाते हैं। इस प्रकार इन प्रत्ययों की कृत् एवं कृत्य दोनों ही संज्ञाएँ स्वीकार की गयीं हैं। इन प्रत्ययों का कर्तरि कृत् सूत्र द्वारा कर्ता अर्थ में विधान प्राप्त होने पर तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः इस अपवाद सूत्र के द्वारा भाव और कर्म अर्थ में विधान किया जाता है। अतः कृत्य प्रत्यय कर्ता अर्थ में न होकर भाव और कर्म अर्थ में ही विहित दिखाई देते हैं।

इस इकाई में हमने यह भी देखा कि पाणिनीय परम्परा में जहाँ सामान्यतया उत्सर्ग का अपवाद नित्य बाधक हुआ करता है वहीं इस प्रकरण में पढ़े गये वाऽसरूप विधि (वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्) के सामर्थ्य से धातोः इस अधिकार में विधीयमान तथा स्त्रियां क्तिन् सूत्र से विहित स्त्र्यधिकार को छोड़कर असरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग प्रत्यय के विकल्प से बाधक हुआ करते हैं। सरूप अपवाद प्रत्यय तो उत्सर्ग का नित्य ही बाध करते हैं – इस पर्यालोचन से यह परोक्ष अर्थ भी स्पष्टतया प्राप्त होता है। संक्षेप में वाऽसरूप विधि को इन वाक्यों द्वारा सरलता से समझा जा सकता है : (1) धातोः (3/1/91 से तृतीय अध्याय की समाप्ति पर्यन्त) के इस अधिकार में असरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग प्रत्यय के विकल्प से बाधक होते हैं। (2) परन्तु इसी अधिकार में सरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग के नित्य ही बाधक होते हैं। (3) स्त्रियां क्तिन् के अधिकार में तो असरूप अपवाद प्रत्यय भी उत्सर्ग प्रत्यय के नित्य बाधक होते हैं।

इसके उपरान्त हमने तव्यत्तव्यानीयरः सूत्र के माध्यम से तव्यत्, तव्य और अनीयर् इन तीन प्रत्ययों तथा केलिमर् उपसंख्यानम् इस वार्तिक के द्वारा विहित केलिमर् प्रत्यय के विधान का सोदाहरण अध्ययन किया। तत्पश्चात् कृत्यल्युटो बहुलम् सूत्र के द्वारा बहुल के चार प्रकारों को समझने के बाद अन्त में अचो यत् सूत्र के द्वारा यत्, एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् सूत्र के द्वारा क्यप् तथा ऋहलोर्ण्यत् सूत्र के द्वारा ण्यत् प्रत्यय का सम्यक् प्रकार से अध्ययन किया।

23.5 शब्दावली

कृत्य – यह कृत्य संज्ञा कृत्दृप्रकरण के अन्तर्गत आने वाले सात प्रत्यय–विशेषों की एक अवान्तर (कृत् के अन्तर्गत कृत्य) संज्ञा है। इस संज्ञा के अन्तर्गत 'तव्य, तव्यत्, अनीयर्, केलिमर्, यत्, क्यप् और ण्यत्' प्रत्यय आते हैं। इन सात प्रत्ययों का एक कारिका में किया गया परिगणन अधोलिखित है –

तव्यञ्च तव्यतञ्ञ्चानीयरं केलिमरं तथा।
यतं ण्यतं क्यपं चौव सप्त कृत्यान् प्रचक्षते ।।

बहुल – क्वचित् प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद् विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति।।

अर्थात् – सूत्रों के विधान को भिन्न–भिन्न प्रकार वाला समझ कर वैयाकरण 'बहुल' के चार प्रकार कहते हैंः (1) कहीं प्रवृत्त हो जाना, (2) कहीं प्रवृत्त न होना, (3) कहीं विकल्प से प्रवृत्त होना, (4) और कहीं कुछ और ही हो जाना। कुछ और होने का तात्पर्य यह है कि निर्धारित योग्यता के अतिरिक्त भी कुछ और ही विधान होता है।

कु – अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः के विधान से उदित् होने के कारण 'कु' से कवर्ग (क, ख, ग, घ, ङ) का बोध होता है।

वृद्धि – 'वृद्धिरादैच्' सूत्र से आ, ऐ और औ की वृद्धि संज्ञा होती है।

हल् – यह एक प्रत्याहार है, जिसके अन्तर्गत सभी व्यञ्जन वर्ण आते हैं।

उपधा – 'अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा' अन्त्य अल् से पूर्व वर्ण की उपधा संज्ञा होती है।

23.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी. गोरखपुरः गीताप्रेस।
2. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या गोविन्दाचार्य. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्लीः चौखम्भा सुरभारती।
3. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, धरानन्द. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्लीः मोतीलाल बनारसी दास।
4. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, भीमसेन. लघुसिद्धान्तकौमुदी (भाग–1–6), दिल्लीः भैमी प्रकाशन।
5. शास्त्री, चारुदेव. व्याकरण चन्द्रोदय. (भाग–1–3), दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास।
6. वरदराजाचार्य, सम्पा० एवं हिन्दी सिंह, सत्यपाल. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्लीः शिवालिक पब्लिकेशन
7. Apte, V.S. The Students, Guide to Sanskrit Composition, Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.
8. Kale, M.R. Higher Sanskrit Grammar, MLBD, Delhi.
9. Kanshi Ram, Laghusiddhantkaumudi (Vol- 1&3), MLBD-Delhi, 2009.
10. Ballantyne, James R. Laghusiddhantkaumudi, Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

23.7 अभ्यास प्रश्न

1. तिङन्त और कृदन्त पदों में परस्पर अन्तर बताइये।

2. किन्हीं 10 धातुओं के साथ तव्यत् और अनीयर् प्रत्ययों का प्रयोग करके पदों का निर्माण कीजिए।
3. वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् और कृत्यल्युटो बहुलम् इन दो सूत्रों की व्याख्या करें।
4. ऋहलोर्ण्यत् और अचो यत् के परस्पर बाध्यबाधक भाव को स्पष्ट करें।
5. कृत्यसंज्ञक प्रत्यय कितने और कौन–कौन से हैं।
6. कृत्य प्रत्यय किन–किन अर्थों में होते हैं? कतिपय उदाहरणों के द्वारा बताइये।
7. कृत्य प्रत्ययान्तों की प्रातिपदिक संज्ञा किस सूत्र से होती है?
8. निम्नलिखित पदों की सूत्र प्रदर्शन पूर्वक सिद्धि करें –

   एधितव्यम्। चयनीयः। दानीयः। स्नानीयम्। चेयम्। लभ्यम्। इत्यः। शिष्यः। कार्यम्।

इकाई 24 पूर्वकृदन्त प्रकरण (प्रथम भाग) (ण्वुल्तृचौ से मनः सूत्र तक)

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप–

- ण्वुल्तृचौ से लेकर मनः सूत्र तक के अध्ययन के माध्यम से सूत्र, सूत्रार्थ एवं उदाहरणों से परिचित हो सकेंगे;
- ण्वुल्, तृच्, णिनि, ल्यु, अच्, क, अण्, ट, खश्, खच्, मनिन्, क्वनिप्, वनिप्, विच् और क्विप् – इन कृत् प्रत्ययों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे
- ठस इकाई में आने वाले कृत् संज्ञक प्रत्यय किन–किन अर्थों में विहित होते हैं? यह भी जान सकेंगे;
- प्रत्यय में लगे हुए अनुबन्धों के प्रयोजन को जान सकेंगे;
- लघुसिद्धान्तकौमुदी के पूर्व–कृदन्त प्रकरण के अन्तर्गत आने वाले प्रत्ययों से सम्बन्धित प्रक्रिया (रूपसिद्धि) को समझ सकेंगे; साथ ही
- इन प्रत्ययों की सहायता से निर्मित होने वाले पदों का ज्ञान तथा भाषिक व्यवहार में इनका यथोचित प्रयोग करने में निपुणता प्राप्त कर सकेंगे।

24.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम पिछली इकाई में पढ़ चुके हैं कि कृदन्त प्रकरण को मुख्यतया दो भागों में विभक्त किया जाता है – पूर्वकृदन्त (अवान्तर भेद–कृत्य प्रकरण) और उत्तरकृदन्त (अवान्तर भेद – उणादि प्रकरण)। वस्तुतः अष्टाध्यायी के तृतीय अध्याय के प्रथम पाद में स्थित धातोः 3/1/91) इस अधिकार सूत्र से आरम्भ होकर तृतीय अध्याय के द्वितीय पाद की समाप्ति पर्यन्त वाला अंश पूर्व कृदन्त के नाम से तथा उणादयो बहुलम् (3/3/1) से लेकर उससे आगे के सम्पूर्ण कृत् प्रकरण को उत्तर कृदन्त के नाम से जाना जाता है। यद्यपि पाणिनीय परम्परा के प्राचीन ग्रन्थों में इस प्रकार का कोई विभाजन उपलब्ध नहीं होता। ऐसा माना जाता है कि उपर्युक्त विभजन पद्धति का आरम्भ सर्व प्रथम भट्टोजिदीक्षित द्वारा अपनी वैयाकरण–सिद्धान्तकौमुदी में किया गया था। कौमुदीकार ने विषय के अवबोध में सरलता हेतु कदाचित् विभाजन की यह स्वकल्पित व्यवस्था का आरम्भ किया होगा। वैयाकरण–सिद्धान्तकौमुदी में ही पूर्वकृदन्त प्रकरण से पूर्व आने वाला कृत्य प्रकरण भी तात्त्विक रूप से पूर्वकृदन्त के अन्तर्गत ही विद्यमान है तथापि अर्थ की दृष्टि से विलक्षणता के कारण उसे पूर्वकृदन्त से पूर्व तथा अलग से उपदिष्ट किया गया प्रतीत होता है। लघुकौमुदीकार ने भी भट्टोजिदीक्षित द्वारा किए गए विषय विभाजन का व्यावहारिक अनुकरण करते हुए सम्पूर्ण कृदन्त प्रकरण को अधोलिखित चार भागों में वर्गीकृत किया है – (1) कृत्य प्रकरण, (2) पूर्वकृदन्त प्रकरण, (3) उणादि प्रकरण और (4) उत्तरकृदन्त प्रकरण।

24.2 कृदन्त प्रकरण

पिछली इकाई में हमने पूर्वकृदन्त प्रकरण के अन्तर्गत आने वाले सात कृत्य संज्ञक प्रत्ययों का भलीभाँति परिचय प्राप्त किया था। इस इकाई में हम पूर्वकृदन्त प्रकरण के प्रथम भाग की चर्चा करेंगे। यहाँ विशेष रूप से ध्यान रखने की बात यह है कि इस इकाई में आने वाले प्रत्ययों की केवल कृत् संज्ञा होगी, कृत्य संज्ञा नहीं।

इस प्रकार वर्तमान पूर्वकृदन्त प्रकरण की द्वितीय इकाई में हम इस प्रकरण के अन्तर्गत आने वाले ण्वुल्तृचौ 3/1/193 सूत्र से लेकर मनः 3/2/82 सूत्र तक के अंश की चर्चा करेंगे। इस प्रकार इन सूत्रद्वय के मध्य आने वाले सूत्रों तथा उनसे विभिन्न अर्थों में होने वाले प्रत्ययों को विस्तार पूर्वक आलोचना वर्तमान इकाई द्वारा की जा रही है। कृत् प्रत्यय सामान्यतः धातु मात्र से विहित होते हैं परन्तु बहुधा किसी शब्द विशेष के अथवा उपसर्गों के उपपद में होने पर ही इन प्रत्ययों का धातु से विधान होना सम्भव हो पाता है। ऐसे स्थल विशेषों का परिज्ञान भी इस इकाई के अध्ययन से हमें प्राप्त हो सकेगा। इस इकाई के अन्तर्गत ण्वुल्, तृच्, णिनि, ल्यु, अच, क, अण्, ट, खश्, खच्, मनिन्, क्वनिप्, वनिप्, विच् और क्विप् प्रत्ययों की चर्चा की जायेगी। इसके साथ ही इन कृत् प्रत्ययों के संयोजन से निष्पन्न होने वाले शब्दों की प्रक्रिया भी प्रकृत पाठ में प्रदर्शित की जायेगी।

24.3 पूर्वकृदन्त प्रकरण (प्रथम भाग) के सूत्र, वृत्ति, सूत्रार्थ, उदाहरण, व्याख्या और रूपसिद्धि
(ण्वुल्तृचौ से मनः तक समस्त सूत्र)

सूत्र – ण्वुल्तृचौ 3/1/133

वृत्ति – धातोरेतौ स्तः। कर्तरि कृदिति कर्त्रर्थे।

सूत्रार्थ – धातु मात्र से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय होते हैं।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में ण्वुल्तृचौ यह प्रथमा द्विवचन का पद है। ये प्रत्यय कर्तरि कृत् सूत्र के अनुसार कर्ता अर्थ में होते हैं। ण्वुल् और तृच् में वु और तृ शेष रहता है। अन्य अनुबन्धों का लोप हो जाता है।

सूत्र – युवोरनाकौ 7/1/1

वृत्ति – यु–वु एतयोरनाकौ स्तः।

सूत्रार्थ – यु और वु के स्थान पर क्रमशः अन और अक आदेश होते हैं।

उदाहरण – कारकः। कर्ता।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में युवोः यह षष्ठी द्विवचन का पद है। अनाकौ यह प्रथमा द्विवचन का पद है। यहां यथासंख्यता होने से क्रमशः अन और अक आदेश होते हैं।

कारकः – करोतीति कारकः। कृ (डुकृञ् करणे) धातु से परे 'ण्वुल्तृचौ' इस सूत्र से कर्ता अर्थ में ण्वुल् प्रत्यय हुआ। कृण्वुल् इस स्थिति में प्रत्यय का आदि णकार की 'चुटू' इस सूत्र से इत् संज्ञा तथा अन्त्य लकार की 'हलन्त्यम्' इस सूत्र से इत् संज्ञा होकर 'तस्य लोपः' सूत्र से इनका लोप हुआ। कृवु इस स्थिति में 'युवोरनाकौ' इस सूत्र से प्रत्यय सम्बन्धी वु के स्थान पर अक आदेश होकर कृ+अक बना। ण्वुल् प्रत्यय के णित् होने के कारण उसके स्थान पर आदेशभूत अक भी स्थानिवद्भाव से णित् हुआ। जिसके फल स्वरूप 'अचो ञ्णिति' इस सूत्र से णित् प्रत्यय परे रहते कृ के ऋकार को वृद्धि हुई। ऋ को वृद्धि व रपर करने से आर् होकर क्+आर्+क बना। तत्पश्चात् वर्ण सम्मेलन करके कारक बना। ण्वुल् एक कृत् प्रत्यय है अतः उसके संयोग से बना कारक शब्द कृदन्त हुआ। जिसके फलस्वरूप 'कृत्तद्धितसमासाश्च' इस सूत्र से कारक शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा हुई। प्रातिपदिक संज्ञक होने से प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय आया तथा विभक्ति सम्बन्धी अन्य कार्य होकर कारकः यह रूप सिद्ध हुआ।

कर्ता – करोतीति कर्ता। कृ धातु से परे जब 'ण्वुल्तृचौ' सूत्र से ण्वुल् प्रत्यय नहीं होता है तब पक्ष में तृच् हो जाता है। अब कृ+तृच् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अन्त्य चकार का अनुबन्धलोप हुआ। कृ+तृ इस स्थिति में 'आर्धधातुकं शेषः' सूत्र से तृ की आर्धधातुक संज्ञा हुई। आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से कृ के इगन्त अङ्ग ऋकार को गुण व रपर होकर अर् हुआ। क्+अर्+तृ इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन करने से कर्तृ बना। तत्पश्चात् प्रातिदिक संज्ञा, प्रथमा विभक्ति एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय हुआ। इसके बाद ऋकारान्त शब्द सम्बन्धी अन्य कार्य होकर कर्ता यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः 3/1/134

वृत्ति – नन्द्यादेर्ल्युः, ग्रह्यादेर्णिनिः, पचादेरच् स्यात्।

सूत्रार्थ – नन्दि आदि धातुओं से ल्यु प्रत्यय, ग्रहि आदि धातुओं से णिनि प्रत्यय तथा पच् आदि धातुओं से अच् प्रत्यय होता है।

उदाहरण – नन्दयतीति नन्दनः। जनमर्दयतीति जनार्दनः। लवणः। ग्राही। स्थायी। मन्त्री। पचादिराकृतिगणः।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में नन्दिग्रहिपचादिभ्यः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। ल्युणिन्यचः यह प्रथमा बहुवचन का पद है। ल्यु प्रत्यय में अनुबन्धलोप होने से यु शेष रहता है। णिनि में अनुबन्धलोप होने से इन् शेष बचता है और अच् में अन्त्य हल् का अनुबन्धलोप होकर अकार शेष रहता है। यहां भी यथासंख्यता के आश्रयण से क्रमशः प्रत्यय विधान होता है।

नन्दयतीति नन्दनः – टुनदि (समृद्धौ) धातु जब ण्यन्त धातु बनकर नन्दि हो जाती है तब उससे परे 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' इस सूत्र से ल्यु प्रत्यय हो जाता है। नन्दि+ल्यु इस स्थिति में 'णेरनिटि' सूत्र से णि सम्बन्धी इकार का लोप हुआ। नन्द्+ल्यु इस स्थिति में लकार की इत् संज्ञा तथा इत् संज्ञक का लोप हुआ। नन्द्+यु इस स्थिति में 'युवोरनाकौ' सूत्र से यु के स्थान पर अन आदेश हुआ। नन्द्+अन इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन करके नन्दन बना। तत्पश्चात् कृदन्त होने से प्रातिपदिक संज्ञा तथा स्वादि उत्पत्ति एवं विभक्ति सम्बन्धी अन्य कार्य हो कर नन्दनः यह रूप सिद्ध हुआ।

जनमर्दयतीति जनार्दनः – जन शब्दपूर्वक ण्यन्त अर्दि धातु से परे 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' इस सूत्र से ल्यु प्रत्यय हुआ। जन्+अर्दि+ल्यु इस स्थिति में 'णेरनिटि' सूत्र से णि सम्बन्धी इकार का लोप हुआ। अब जन्+अर्द्+ल्यु ऐसी स्थिति में लकार की इत् संज्ञा तथा इत् संज्ञक का लोप हुआ। जन्+अर्द्+यु इस स्थिति में 'युवोरनाकौ' सूत्र से यु के स्थान पर अन आदेश हुआ। पुनः जन+अर्द्+अन इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन करके जनार्दन बना। तत्पश्चात् कृदन्त होने से प्रातिपदिक संज्ञा तथा स्वादि उत्पत्ति एवं विभक्ति सम्बन्धी अन्य कार्य हो कर जनार्दनः यह रूप सिद्ध हुआ।

लुनातीति लवणः – लूञ् (छेदने) धातु से परे 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' इस सूत्र से ल्यु प्रत्यय हुआ। लू+ल्यु स्थिति में लकार की इत् संज्ञा तथा इत् संज्ञक का लोप हुआ। लू+यु इस स्थिति में 'युवोरनाकौ' सूत्र से यु के स्थान पर अन आदेश हुआ। लू+अन इस स्थिति में अन की आर्धधातुक संज्ञा होने के कारण 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से लकारोत्तरवर्ती उकार को गुण हुआ। लो+अन इस स्थिति में अच् परे रहते 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ओ को अव् आदेश हुआ। ल्+अव्+अन इस स्थिति में निपातनात् नकार को णकार तथा वर्ण सम्मेलन करके लवण बना। तत्पश्चात् कृदन्त होने से प्रातिपदिक संज्ञा तथा स्वादि उत्पत्ति एवं विभक्ति सम्बन्धी अन्य कार्य हो कर लवणः यह रूप सिद्ध हुआ।

गृह्णातीति ग्राही – ग्रह् (ग्रह उपादाने) धातु से परे 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' इस सूत्र से णिनि प्रत्यय हुआ। ग्रह्+णिनि इस स्थिति में प्रत्ययस्थ अनुबन्धों का लोप हो कर ग्रह्+इन् बना। इन् प्रत्यय के णित् होने के कारण उससे पूर्व उपधा में विद्यमान अकार उसे 'अत उपधायाः' सूत्र से वृद्धि हुई। ग्राह्+इन् इसके बाद वर्ण सम्मेलन हो कर ग्राहिन् बना। तत्पश्चात् प्रातिपदिक संज्ञा, प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय तथा अन्य सम्बन्धित कार्य होने के बाद ग्राही यह रूप सिद्ध हुआ।

तिष्ठतीति स्थायी – स्था (गतिनिवृत्तौ) धातु से परे 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' इस सूत्र से णिनि प्रत्यय हुआ। स्था+णिनि इस स्थिति में प्रत्ययस्थ अनुबन्धों का लोप हो कर स्था+इन् बना। तदनन्तर 'आतो युक् चिण्कृतोः' सूत्र से युक् का आगम हुआ। स्था+युक्+इन् इस स्थिति में आगम सम्बन्धी अनुबन्धों के लोप के बाद वर्ण सम्मेलन हो कर स्थायिन् बना। तत्पश्चात् प्रातिपदिक संज्ञा, प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय तथा अन्य सम्बन्धित कार्य होने के पश्चात् स्थायी यह रूप सिद्ध हुआ।

मन्त्रयते इति मन्त्री – मत्रि (गुप्तभाषणे) से णिच् प्रत्यय होकर बना मन्त्रि इस णिजन्त धातु से परे 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' इस सूत्र से णिनि प्रत्यय हुआ। मन्त्रि+णिनि इस स्थिति में प्रत्ययस्थ अनुबन्धों का लोप हो कर मन्त्रि+इन् बना। इस स्थिति में 'णेरनिटि' सूत्र से णि सम्बन्धी इकार का लोप हुआ। मन्त्र+इन इसके बाद वर्ण सम्मेलन हो कर मन्त्रिन् बना। तत्पश्चात् प्रातिपदिक संज्ञा, प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय हुआ तथा उससे सम्बन्धित अन्य कार्य होने के बाद मन्त्री यह रूप सिद्ध हुआ।

पचतीति पचः – पच् (डुपचष् पाके) धातु से परे 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' इस सूत्र से अच् प्रत्यय हुआ। पच्+अच् इस स्थिति में प्रत्यय के अन्त्य चकार की इत् संज्ञा तथा उसका लोप हुआ। पच्+अ इसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर प्रातिपदिक संज्ञा हुई। उसके बाद प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय आया तथा उससे बाद अन्य आवश्यक कार्य होकर पचः यह रूप सिद्ध हुआ।

वक्तीति वचः – वच् धातु से परे 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' इस सूत्र से अच् प्रत्यय हुआ। वच्+अच् इस स्थिति में प्रत्यय के अन्त्य चकार की इत् संज्ञा तथा उसका लोप हुआ।

वच्+अ इसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर प्रातिपदिक संज्ञा हुई। उसके बाद प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय आया तथा उसके पश्चात् अन्य आवश्यक कार्य होकर वचः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः 3/1/135

वृत्ति – एभ्यः कः स्यात्।

उदाहरण – बुधः। कृशः। ज्ञः। प्रियः। किरः।

सूत्रार्थ – इक् (इ, उ, ऋ, लृ) उपधा में हो जिसके ऐसे धातु तथा ज्ञा, प्री और कृ धातुओं से क प्रत्यय का विधान होता है।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में इगुपधज्ञाप्रीकिरः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। कः यह प्रथमा एकवचन का पद है। क प्रत्यय में भी ककार का अनुबन्ध लोप होकर शेष अकार बचता है।

बोधति बुध्यते इति वा बुधः – बुध् (बुध अवगमने) धातु से परे 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' इस सूत्र से क प्रत्यय हुआ। बुध्+क इस स्थिति में प्रत्यय के ककार की इत् संज्ञा एवं लोप हुआ। बुध्+अ इस स्थिति में प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होने के कारण 'पुगन्तलघूपधस्य च' इस सूत्र से गुण प्राप्त था जिसका कित् होने के कारण 'क्ङिति च' सूत्र से निषेध हो गया। इसके बाद वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि उत्पत्ति एवं उससे सम्बन्धित अन्य कार्य होकर बुधः यह रूप सिद्ध हुआ।

कृश्यतीति कृशः – कृश् (तनूकरणे) धातु से परे 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' इस सूत्र से क प्रत्यय हुआ। कृश्+क इस स्थिति में प्रत्यय के ककार की इत् संज्ञा एवं लोप हुआ। कृश्+अ इस स्थिति में प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होने के कारण 'पुगन्तलघूपधस्य च' इस सूत्र से गुण प्राप्त था जिसका कित् होने के कारण 'क्ङिति च' सूत्र से निषेध हो गया। इसके बाद वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि उत्पत्ति एवं अन्य सम्बन्धित कार्य होकर कृशः यह रूप सिद्ध हुआ।

जानातीति ज्ञः – ज्ञा (अवबोधने) धातु से परे 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' इस सूत्र से क प्रत्यय हुआ। ज्ञा+क इस स्थिति में प्रत्यय के ककार की इत् संज्ञा एवं लोप हुआ। ज्ञा+अ इस स्थिति में धातु सम्बन्धी आकार का 'आतो लोप इटि च' इस सूत्र से लोप हुआ। ज्ञ्+अ इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि उत्पत्ति एवं उससे सम्बन्धित अन्य कार्य होकर बुधः यह रूप सिद्ध हुआ।

प्रीणातीति प्रियः – प्रीञ् (तर्पणे) धातु से परे 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' इस सूत्र से क प्रत्यय हुआ। प्री+क इस स्थिति में प्रत्यय के ककार की इत् संज्ञा एवं लोप हुआ। प्री+अ इस स्थिति में प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होने के कारण 'पुगन्तलघूपधस्य च' इस सूत्र से गुण प्राप्त था जिसका कित् होने के कारण 'क्ङिति च' सूत्र से निषेध हो गया । इसके बाद 'अचि

श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ' सूत्र से धातु के अन्त्य ईकार के स्थान पर इयङ् आदेश हुआ। पर्+इयङ् +अ इस स्थिति में इयङ् के अनुबन्धों का लोप हुआ। तत्पश्चात् वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि उत्पत्ति एवं उससे सम्बन्धित अन्य कार्य होकर प्रियः यह रूप सिद्ध हुआ।

विक्षिपतीति किरः। कृ (विक्षेपे) धातु से परे 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' इस सूत्र से क प्रत्यय हुआ। कृ+क इस स्थिति में प्रत्यय के ककार की इत् संज्ञा एवं लोप हुआ। कृ+अ इस स्थिति में प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होने के कारण 'पुगन्तलघूपधस्य च' इस सूत्र से गुण प्राप्त था जिसका कित् होने के कारण 'क्ङिति च' सूत्र से निषेध हो गया । तत्पश्चात् 'ऋत इद् धातोः' सूत्र से धातु के ऋकार के स्थान पर इर् हुआ। क्+ईर्+अ इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि उत्पत्ति एवं उससे सम्बन्धित अन्य कार्य होकर किरः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – आतश्चोपसर्गे 3/1/136

सूत्रार्थ – यदि उपसर्ग उपपद में हो तो आकारान्त धातुओं से भी क प्रत्यय होता है।

उदाहरण – प्रज्ञः। सुग्लः।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में आतः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। च यह अव्यय पद है। उपसर्गे यह सप्तमी एकवचन का पद है। ककार की इत्संज्ञा होती है। यहाँ कित् का फल आकार का लोप करना है। तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् से उपपदसंज्ञा की जाती है।

प्रजानातीति प्रज्ञः – प्र उपसर्ग पूर्वक 'ज्ञा' (अवबोधने) इस आकारान्त धातु से परे 'आतश्चोपसर्गे' सूत्र से क प्रत्यय हुआ। प्रज्ञा+क इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी आदि ककार का अनुबन्धलोप हुआ। प्रज्ञा+अ इस अवस्था में 'आतो लोप इटि च' इस सूत्र से अजादि कित् प्रत्यय 'अ' के परे रहते धातु सम्बन्धी आकार का लोप हुआ। प्र+ज्ञ्+अ इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि उत्पत्ति एवं उससे सम्बन्धित अन्यान्य कार्य होकर प्रज्ञः यह रूप सिद्ध हुआ।

सुग्लायतीति सुग्लः – सु उपसर्ग पूर्वक ग्लै (हर्षक्षये) धातु से परे 'आतश्चोपसर्गे' सूत्र से क प्रत्यय हुआ। सु+ग्लै+क इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी आदि ककार का अनुबन्धलोप हुआ। सु+ग्लै+अ इस स्थिति में 'आदेच उपदेशेऽशिति' सूत्र से धातु के ऐकार के स्थान में आकार आदेश हुआ। सु+ग्ला+अ इस अवस्था में 'आतो लोप इटि च' इस सूत्र से अजादि कित् प्रत्यय 'अ' के परे रहते धातु सम्बन्धी आकार का लोप हुआ। सु+ग्ल्+अ इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि उत्पत्ति एवं उससे सम्बन्धित अन्य कार्य होकर सुग्लः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – गेहे कः 3/1/144

वृत्ति – गेहे कर्तरि ग्रहेः कः स्यात्।

सूत्रार्थ – ग्रह् धातु से क प्रत्यय होता है, यदि इसका कर्ता घर हो तो।

उदाहरण – गृहम्।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में गेहे यह सप्तमी एकवचन का पद है। कः यह प्रथमा एकवचन का पद है।

गृह्णाति धान्यादिकमिति गृहम् – ग्रह् धातु से परे कर्ता अर्थ में 'गेहे कः' इस सूत्र से क प्रत्यय हुआ। ग्रह्+क इस स्थिति में ककार का अनुबन्धलोप हुआ। ग्रह्+अ इस स्थिति में 'ग्रहि–ज्या–वयि–व्यधि–वष्टि–विचति–वृश्चति–पृच्छति–भृज्जतीनां ङिति च' इस सूत्र से कित् प्रत्यय 'अ' के परे रहते ग्रह् धातु के रेफ के स्थान पर सम्प्रसारण होकर ऋकार हुआ। ग्+ऋ+अ+ह्+अ इस स्थिति में 'सम्प्रसारणाच्च' सूत्र से ऋकार और उससे पर जो अकार इन दोनों (ऋ+अ) के स्थान पर पूर्वरूप होकर ऋकार हुआ। गृह्+अ इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन तथा नपुंसकलिङ्ग में स्वादि उत्पत्ति एवं उससे सम्बन्धित अन्य कार्य होकर गृहम् यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – कर्मण्यण् 3/2/1

वृत्ति – कर्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययः स्यात्।

सूत्रार्थ – कर्म उपपद में हो तो धातु से अण् प्रत्यय होता है।

उदाहरण – कुम्भं करोतीति कुम्भकारः।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में कर्मणि यह सप्तमी एकवचन का पद है। अण् यह प्रथमा एकवचन का पद है। अण् में णकार की इत्संज्ञा होती है। णित् होने का फल वृद्धि कार्य है।

कुम्भं करोतीति कुम्भकारः – कुम्भ+अम्+कृ यहाँ पर कुम्भ यह कर्म और कृ धातु है। कुम्भः+अम्+कृ इस अवस्था में कुम्भ की तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्इस सूत्र से उपपदसंज्ञा हुई और कर्म के उपपद रहने पर कृ (डुकृञ् करणे) धातु से परे 'कर्मण्यण्' इस सूत्र से अण् प्रत्यय हुआ। कुम्भ+कृ+अण् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी णकार का अनुबन्धलोप हुआ। कुम्भ+कृ+अ इस अवस्था में णित् प्रत्यय अकार के परे रहते 'अचो ञ्णिति' सूत्र से धातु सम्बन्धी ऋकार को वृद्धि रपर होने से आर् हुआ। कुम्भ+क्+आर्+अ इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि उत्पत्ति एवं उससे सम्बन्धित अन्य कार्य होकर कुम्भकारः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – आतोऽनुपसर्गे कः 3/2/3

वृत्ति – आदन्ताद्धातोरनुपसर्गात् कर्मण्युपपदे कः स्यात्। अणोऽपवादः। आतोलोप इटि च।

सूत्रार्थ – उपसर्ग पूर्व में न हो तथा कर्म उपपद में हो ऐसे आकारान्त धातु से क प्रत्यय होता है। यह सूत्र अण् का अपवाद करता है।

उदाहरण – गोदः। धनदः। कम्बलदः। अनुपसर्गे किम्? गोसन्दायः।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में आतः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। अनुपसर्गे यह सप्तमी एकवचन का पद है। कः यह प्रथमा एकवचन का पद है। यह सूत्र कर्मण्यण् का नित्य अपवाद करता है, क्योंकि अण् और क दोनों ही प्रत्ययों में अकार ही शेष रहता है। अतः सरूप प्रत्यय होने के कारण वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती है।

गां ददातीति गोदः – गो कर्म के उपपद में रहते दा (डुदाञ् दाने) धातु से परे 'आतोऽनुपसर्गे कः' सूत्र से क प्रत्यय हुआ। गो+दा+क इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी आदि ककार का अनुबन्धलोप हुआ। गो+दा+अ इस अवस्था में 'आतो लोप इटि च' इस सूत्र से अजादि कित् प्रत्यय 'अ' के परे रहते धातु सम्बन्धी आकार का लोप हुआ। गो+द्+अ इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि उत्पत्ति एवं उससे सम्बन्धित अन्य कार्य होकर गोदः यह रूप सिद्ध हुआ।

धनं ददातीति धनदः – धन कर्म के उपपद में रहते दा (डुदाञ् दाने) धातु से परे 'आतोऽनुपसर्गे कः' सूत्र से क प्रत्यय हुआ। धन+दा+क इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी आदि ककार का अनुबन्धलोप हुआ। धन+दा+अ इस अवस्था में 'आतो लोप इटि च' इस सूत्र से अजादि कित् प्रत्यय 'अ' के परे रहते धातु सम्बन्धी आकार का लोप हुआ। धन+द्अ इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि उत्पत्ति एवं उससे सम्बन्धित अन्य कार्य होकर धनदः यह रूप सिद्ध हुआ।

कम्बलं ददातीति कम्बलदः – कम्बल कर्म के उपपद में रहते दा (डुदाञ् दाने) धातु से परे 'आतोऽनुपसर्गे कः' सूत्र से क प्रत्यय हुआ। कम्बल+दा+क इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी आदि ककार का अनुबन्धलोप हुआ। कम्बल+दा+अ इस अवस्था में 'आतो लोप इटि च' इस सूत्र से अजादि कित् प्रत्यय 'अ' के परे रहते धातु सम्बन्धी आकार का लोप हुआ। कम्बल+द्+अ इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि उत्पत्ति एवं उससे सम्बन्धित अन्य कार्य होकर कम्बलदः यह रूप सिद्ध हुआ।

वार्तिक – मूलविभुजादिभ्यः कः।

अर्थ – मूलविभूज आदि शब्दों की सिद्धि के लिए क प्रत्यय हो, ऐसा कहना चाहिए।

उदाहरण – मूलानि विभुजति मूलविभुजो रथः। आकृतिगणोऽयम्। महीं धरतीति महीध्रः। कुं (पृथ्वीं) धरतीति कुध्रः।

सूत्र – चरेष्टः 3/2/16

अधिकरणे उपपदे।

सूत्रार्थ – अधिकरण उपपद में होने पर चर् धातु से ट प्रत्यय होता है।

उदाहरण – कुरुचरः।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। चरेः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। टः यह प्रथमा एकवचन का पद है। टकार की चुटू से इत्संज्ञा होने पर अकार शेष रहता है। ट प्रत्यय में टकार की इत्संज्ञा करने का अर्थात् टित् करने का प्रयोजन स्त्री प्रत्यय में टिड्ढाणञ्. आदि सूत्रों से ङीप् प्रत्यय कराना है।

कुरुषु चरतीति कुरुचरः – अधिकरणार्थक कुरु शब्द के उपपद रहते चर् धातु से परे प्रकृत सूत्र 'चरेष्टः' से ट प्रत्यय हुआ। कुरु+चर्+ट इस स्थिति में टकार का अनुबन्धलोप हुआ। कुरु+चर्+अ इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि कार्य होकर कुरुचरः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – भिक्षासेनादायेषु च 3/2/17

सूत्रार्थ – भिक्षा, सेना और आदाय इन तीन सुबन्तों के उपपद में होने पर भी चर् धातु से ट प्रत्यय होता है।

उदाहरण – भिक्षाचरः। सेनाचरः। आदायेति ल्यबन्तम्, आदायचरः।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में भिक्षासेनादायेषु यह सप्तमी बहुवचन का पद है। च यह अव्यय पद है।

भिक्षां चरतीति भिक्षाचरः – भिक्षा इस कर्म के उपपद में रहते चर् धातु से परे प्रकृत सूत्र 'भिक्षासेनादायेषु च' से ट प्रत्यय हुआ। भिक्षा+चर्+ट इस स्थिति में टकार का अनुबन्धलोप हुआ। भिक्षा+चर्+अ इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि कार्य होकर भिक्षाचरः यह रूप सिद्ध हुआ।

सेनां चरति प्रविशतीति सेनाचरः – सेना इस कर्म के उपपद में रहते चर् धातु से परे प्रकृत सूत्र 'भिक्षासेनादायेषु च' से ट प्रत्यय हुआ। सेना+चर्+ट इस स्थिति में टकार का अनुबन्धलोप हुआ। सेना+चर्+अ इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि कार्य होकर सेनाचरः यह रूप सिद्ध हुआ।

आदाय चरतीति आदायचरः – आदाय इस ल्यबन्त अव्यय के उपपद में रहते चर् धातु से परे प्रकृत सूत्र 'भिक्षासेनादायेषु च' से ट प्रत्यय हुआ। आदाय +चर्+ट इस स्थिति में टकार का अनुबन्धलोप हुआ। आदाय +चर् +अ इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि कार्य होकर आदायचरः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – कृञो हेतु–ताच्छील्यानुलोम्येषु 3/2/20

वृत्ति – एषु द्योत्येषु करोतेष्टः स्यात्।

सूत्रार्थ – हेतु (कारण), ताच्छील्य (तत्स्वभाव) और आनुलोम्य (अनुकूलता, आज्ञाकारिता, वशवर्तिता) ये तीन अर्थ यदि द्योत्य हों तो डुकृञ् धातु से ट प्रत्यय होता है।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में कृञः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। हेतु–ताच्छील्यानुलोम्येषु यह सप्तमी बहुवचन का पद है।

सूत्र – अतः कृ–कमि–कंस–कुम्भ–पात्र–कुशा–कर्णीष्वनव्ययस्य 8/3/46

वृत्ति – आदुत्तरस्यानव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः करोत्यादिषु परेषु।

सूत्रार्थ – कृ, कमि, कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा और कर्णी से परे होने पर ह्रस्व अकार से परे उत्तरपद में स्थित न हो, ऐसे अव्ययभिन्न विसर्ग को समास में नित्य से सकार आदेश होता है।

सूत्र के अर्थ को स्पष्टता एवं सरलता से इस प्रकार से जाना जा सकता है –

उदाहरण – यशस्करी विद्या। श्राद्धकरः। वचनकरः।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में अतः यह पञ्चमी एकवचन का पद है कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीषु यह सप्तमी बहुवचन का पद है। अनव्ययस्य यह षष्ठी एकवचन का पद है।

इस सूत्र के द्वारा विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश का विधान किया जाता है। इस विधान को अधोलिखित पाँच सूत्र वाक्यों द्वारा भी समझा जा सकता है –

1. जिस विसर्ग के स्थान पर सकार होना है, उसे अव्यय भिन्न होना चाहिए।
2. वह विसर्ग ह्रस्व अकार से परे हो।
3. विसर्ग से परे कृ, कम् आदि में से कोई हो।
4. पद समस्त हो अर्थात् समास हो चुका हो।
5. वह विसर्ग उत्तरपद में स्थित न हो।

यशः करोतीति यशस्करी विद्या – यशस् इस कर्म के उपपद में रहते कृ धातु से परे 'कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु' इस सूत्र से हेतु अर्थ द्योत्य होने पर ट प्रत्यय हुआ। यशस्+कृ+ट इस स्थिति में प्रत्यय के टकार का अनुबन्धलोप हुआ। यशस्+कृ+अ इस स्थिति में प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होने के कारण धातु के ऋकार को गुण अर् हुआ। यशस्+क्+अर्+अ इस स्थिति में यशस् के सकार को विसर्ग सन्धि के नियमानुसार विसर्ग हुआ। यशः+कर्+अ इस स्थिति में 'उपपदमतिङ्' सूत्र से समास हुआ। समस्त पद होने के कारण 'अतः कृ–कमि–कंस–कुम्भ–पात्र–कुशा–कर्णीष्वनव्ययस्य' इस सूत्र से कृ के परे रहते ह्रस्व अकार से परे विसर्ग को नित्य सकार आदेश हुआ। यशस्+कर्+अ इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन होकर

स्त्रित्त्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय हुआ। तत्पश्चात् स्वादि कार्य होकर यशस्करी यह रूप सिद्ध हुआ।

श्राद्धं करोति तच्छीलम् श्राद्धकरः – श्रद्धा इस कर्म के उपपद में रहते कृ धातु से परे 'कृञो हेतु–ताच्छील्यानुलोम्येषु' इस सूत्र से हेतु अर्थ द्योत्य होने पर ट प्रत्यय हुआ। श्रद्धा+कृ+ट इस स्थिति में प्रत्यय के टकार का अनुबन्धलोप हुआ। श्रद्धा+कृ+अ इस स्थिति में प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होने के कारण धातु के ऋकार को गुण अर् हुआ। श्रद्धाकर इस स्थिति में स्वादि कार्य होकर श्रद्धाकरः यह रूप सिद्ध हुआ।

वचनं करोतीति वचनकरः – वचन इस कर्म के उपपद में रहते कृ धातु से परे 'कृञो हेतु–ताच्छील्यानुलोम्येषु' इस सूत्र से हेतु अर्थ द्योत्य होने पर ट प्रत्यय हुआ। वचन+कृ+ट इस स्थिति में प्रत्यय के टकार का अनुबन्धलोप हुआ। वचन+कृ+अ इस स्थिति में प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होने के कारण धातु के ऋकार को गुण अर् हुआ। वचऩकर इस स्थिति में स्वादि कार्य होकर वचनकरः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – एजेः खश् 3/2/28

वृत्ति – ण्यन्तादेजेः खश् स्यात्।

सूत्रार्थ – कर्म उपपद में रहते ण्यन्त एज् धातु से खश् प्रत्यय होता है।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में एजेः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। खश् यह प्रथमा एकवचन का पद है। यहां खकार की लशक्वतद्धिते से और शकार की हलन्त्यम् से इत्संज्ञा होकर दोनों का तस्य लोपः से लोप होने पर अकार शेष रहता है। खश् के शकार का लोप होने से खश् का अकार शित् है। शित् होने के कारण इस अकार की तिङ्शित्सार्वधातुकम् से सार्वधातुकसंज्ञा होकर कर्तरि शप् से शप् आदि होता है। खकार की इत्संज्ञा होने के कारण खित् भी है, अतः अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् सूत्र से मुम् का आगम हो जाता है।

सूत्र – अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6/3/67

वृत्ति – अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः स्यात् खिदन्ते परे न त्वव्ययस्य। शित्त्वाच्छबादिः।

सूत्रार्थ – अरुस् (मर्मस्थान), द्विषत् (शत्रु) तथा अजन्त शब्दों को मुम् का आगम होता है खिदन्त उत्तरपद में हो तो, परन्तु यह आगम अव्यय को नहीं होता।

उदाहरण – जनमेजयतीति जनमेजयः।

व्याख्या – यह आगम विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में अरुर्द्विषदजन्तस्य यह षष्ठी एकवचन का पद है। मुम् यह प्रथमा एकवचन का पद है। अरुस् द्विषत् तथा अजन्त शब्दों को मुम् का आगम होता है खिदन्त परे होने पर, परन्तु यह मुम् आगम अव्यय को नहीं होगा। मुम् में

उकार और मकार की इत्संज्ञा होती है, म् ही शेष रहता है। मित् होने के कारण मिदचोऽन्त्यात्परः सूत्र से अन्त्य अच् के बाद (अन्त्यावयव) होकर रहता है।

जनमेजयतीति जनमेजयः – जन कर्म के उपपद में रहते ण्यन्त एजि (एजृ कम्पने) धातु से परे 'एजेः खश्' इस सूत्र से खश् प्रत्यय हुआ। जन+एजि+खश् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी आदि खकार और अन्त्य शकार का अनुबन्धलोप हुआ। जन+एजि+अ इस स्थिति में शेष अकार शित् होने से 'कर्तरि शप्' सूत्र से शप् प्रत्यय हुआ तथा उसके भी अनुबन्धों का लोप होकर जन+एजि+अ+अ बना। तत्पश्चात् 'अतो गुणे' इस सूत्र से अ+अ के स्थान पर पूर्वरूप हुआ। जन+एजि+अ इस स्थिति में 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इस सूत्र से एजि सम्बन्धी इकार को गुण एकार आदेश हुआ। जन+एजे+अ इस अवस्था में 'एचोऽयवायावः' सूत्र से अच् अकार के परे रहते एकार के स्थान पर अय् आदेश हुआ। जन+एज्अय्+अ इस अवस्था में 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इस सूत्र से खिदन्त एजय उत्तरपद में होने के कारण अजन्त जन शब्द को मुम् आगम हुआ। जन+मुम्+एजय इस स्थिति में मुम् के अनुबन्धों का लोप हो कर म् शेष बचा तथा वर्ण सम्मेलन होने से जनमेजय बना। तत्पश्चात् स्वादि उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होने से जनमेजयः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – प्रियवशे वदः खच् 3/2/38

सूत्रार्थ – प्रिय अथवा वश रूप कर्म के उपपद में रहते वद् धातु से खच् प्रत्यय होता है।

उदाहरण – प्रियंवदः। वशंवदः।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में प्रियवशे यह सप्तमी एकवचन का पद है। वदः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। खच् यह प्रथमा एकवचन का पद है। खच् में खकार और चकार दोनों की इत् संज्ञा होती है, अ ही शेष रहता है।साथ ही खित् होने के कारण मुम् का आगम होता है।

प्रियं वदतीति प्रियंवदः – प्रिय इस कर्म के उपपद में रहते वद् धातु से परे 'प्रियवशे वदः खच् सूत्र से खच् प्रत्यय हुआ। प्रिय +वद्+ खच् इस स्थिति में प्रत्यय में स्थित अनुबन्धों का लोप हुआ। प्रिय +वद्+अ इस अवस्था में ' अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इस सूत्र से खिदन्त वद धातु के उत्तरपद में होने के कारण अजन्त प्रिय शब्द को मुम् आगम हुआ। प्रिय +मुम्+वद इस स्थिति में मुम् के अनुबन्धों का लोप हो कर म् शेष बचा तथा वर्ण सम्मेलन होने से प्रियंवद बना। तत्पश्चात् स्वादि उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होने से प्रियंवदः यह रूप सिद्ध हुआ।

वशम् आयत्तमात्मानं वदतीति वशंवदः – वश इस कर्म के उपपद में रहते वद् धातु से परे 'प्रियवशे वदः खच्' सूत्र से खच् प्रत्यय हुआ। वश+वद्+ खच् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। वश+वद्+अ इस अवस्था में 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इस सूत्र से खिदन्त वद उत्तरपद में होने के कारण अजन्त वश शब्द को मुम् आगम हुआ। वश+मुम्+वद इस स्थिति में मुम् के अनुबन्धों का लोप हो कर म् शेष बचा तथा वर्ण सम्मेलन होने से

वशंवद बना। तत्पश्चात् स्वादि उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होने से वशंवदः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – अन्योभ्योऽपि दृश्यन्ते 3/2/75

वृत्ति – मनिन् क्वनिप् वनिप् विच् एते प्रत्ययाः धातोः स्युः।

सूत्रार्थ – धातु से मनिन्, क्वनिप्, वनिप् और विच् प्रत्यय होते हैं।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। अन्योभ्यः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। अपि यह अव्यय पद है। दृश्यन्ते यह क्रिया पद है। यहां दृश्यन्ते से तात्पर्य यह है कि – लौकिक शिष्ट प्रयोगों में धातु से इन प्रत्ययों के विधान भी देखे गये है। तात्पर्य यह है कि जहाँ–जहाँ शिष्टों ने उक्त प्रयोग किया है, उन्हें हम प्रकृत सूत्र से सिद्ध मान सकते हैं किन्तु अपने इच्छा से लोक में ऐसे प्रयोग नहीं करने चाहिए। उक्त चारों प्रत्ययों में अनुबन्ध लोप आदि कार्य होकर क्रमशः मन्, वन्, वन्, शेष रहते हैं। विच् में सर्वापहारी लोप अर्थात् सभी वर्णों का लोप हो जाता है। विच् इस कृत् प्रत्यय के अपृक्त वकार का वेरपृक्तस्य से लोप होता है।

सूत्र – नेड्वशि कृति 7/2/8

वृत्ति – वशादेः कृत इण् न स्यात्।

सूत्रार्थ – वश् प्रत्याहार (व्, र्, ल् तथा वर्गों के तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम वर्ण) जिस के आदि में हो ऐसे कृत्संज्ञक प्रत्यय परे रहते इट् का आगम नहीं होता है।

उदाहरण – शृ हिंसायाम्। सुशर्मा। प्रातरित्वा।

व्याख्या – यह निषेधात्मक विधि सूत्र है। इस सूत्र में न यह अव्यय पद है। इड् प्रथमा एकवचन का पद है। वशि और कृति सप्तमी एकवचन के पद हैं।

सुष्ठु शृणाति हिनस्ति पापानीति सुशर्मा – सु उपसर्ग के उपपद में रहते शृ (हिंसायाम्) धातु से परे 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' इस सूत्र से मनिन् प्रत्यय हुआ। सुशृ+मनिन् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। सुशृ+मन् इस स्थिति में वलादि आर्धधातुक प्रत्यय के परे होने के कारण 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' सूत्र से इट् आगम प्राप्त हुआ। जिसका निषेध 'नेड् वशि कृति' इस सूत्र से वशादि कृत् प्रत्यय मन् के परे होने के कारण हुआ। सुशृ+मन् इस सथिति में ऋकार को गुण होकर सुर्शमन् हुआ। तत्पश्चात् वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि कार्य होकर सुशर्मा यह रूप सिद्ध हुआ।

प्रातरेति प्रातरित्वा – प्रातर इस उपसर्ग के उपपद में रहते इण् (गतौ) धातु से परे 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' इस सूत्र से क्वनिप् प्रत्यय हुआ। प्रातर्+इ+क्वनिप् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। प्रातर्+इ+वन् इस स्थिति में वलादि आर्धधातुक प्रत्यय के परे होने

के कारण 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' सूत्र से इट् आगम प्राप्त हुआ। जिसका निषेध 'नेड् वशि कृति' इस सूत्र से वशादि कृत् प्रत्यय वन् के परे होने के कारण हुआ। प्रातर्+इ+वन् इस सथिति में 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' सूत्र से पित् कृत् प्रत्यय वन् को तुक् का आगम हुआ। प्रातर्+इ+तुक्+वन् इस स्थिति में आगम सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। प्रातर्+इ+त्+वन् वर्ण सम्मेलन होकर प्रातरित्वन् बना। तत्पश्चात् स्वादि कार्य होकर प्रातरित्वा यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत् 6/4/41

वृत्ति – अनुनासिकस्याऽऽस्यात्।

सूत्रार्थ – विड् अथवा वन् प्रत्यय परे रहते अनुनासिक वर्ण के स्थान पर आकार आदेश होता है।

उदाहरण – विजायत इति विजावा। ओणृ अपनयने। अवावा। विच्। रुष रिष हिंसायाम्। रोट्। रेट्। सुगण्।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में विड्वनोः यह सप्तमी एकवचन का पद है। अनुनासिकस्य यह षष्ठी एकवचन का पद है। आत् प्रथमा एकवचन का पद है।

विजायत इति विजावा – वि उपसर्ग पूर्वक जन् धातु से परे 'अन्येभ्योपि दृश्यन्ते' सूत्र से वनिप् प्रत्यय हुआ। वनिप् प्रत्यय में इकार और पकार का अनुबन्धलोप हुआ। विजन्+वन् इस स्थिति में इट् प्राप्त हुआ। जिसका 'नेड् वशि कृति' सूत्र से निषेध हुआ। विजन्+वन् इस स्थिति में 'विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत्' सूत्र से जन् के अनुनासिक वर्ण नकार के स्थान पर आकार आदेश हुआ। विज+आ+वन् इस स्थिति में 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से सवर्ण दीर्घ हुआ। विजा+वन् इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि कार्य होकर विजावा यह रूप सिद्ध हुआ।

ओणति, अपनयतीति अवावा – ओण् (ओणृ अपनयने) इस धातु से परे 'अन्येभ्योपि दृश्यन्ते' सूत्र से वनिप् प्रत्यय हुआ। वनिप् प्रत्यय में इकार और पकार का अनुबन्धलोप हुआ। ओण्+वन् इस स्थिति में इट् प्राप्त हुआ। जिसका 'नेड् वशि कृति' सूत्र से निषेध हुआ। ओण्+वन् इस स्थिति में 'विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत्' सूत्र से ओण् के अनुनासिक वर्ण णकार के स्थान पर आकार आदेश हुआ। ओ+आ+वन् इस स्थिति में 'एचोऽयवायावः' से अव् आदेश हुआ। अव्+आ+वन् इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि कार्य होकर अवावा यह रूप सिद्ध हुआ।

रोषति रेषति हिनस्तीति रोट्, रेट् – षकारान्त रुष् और रिष् (रुष रिष हिंसायाम्) धातु से परे 'अन्येभ्योपि – श्यन्ते' सूत्र से विच् प्रत्यय हुआ। चकार की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, इकार उच्चारणार्थ है, वकार को 'अपृक्तः एकाल् प्रत्ययः' से अपृक्त संज्ञा, 'वेरपृक्तस्य' से वलोप का होने विच् प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हो जाता है। तत्पश्चात् प्रत्यय लक्षण से विच् प्रत्यय

परे मान कर उसकी आर्धधातुक संज्ञा होने के कारण 'पुगन्तलघूपधस्य च' सूत्र से आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते उपधा में विद्यमान इकार और उकार को क्रमशः एकार और ओकार गुण हो जाता है। रेष् और रोष् इस स्थिति में स्वादि कार्य होकर रोट् और रेट् यह रूप सिद्ध हुए।

सुष्ठु गणयति सुगण् – गण् (संख्याने) धातु को स्वार्थ में णिच् प्रत्यय होकर गणि बना है। तत्पश्चात् सु उपसर्ग पूर्वक गणि धातु से परे 'अन्येभ्योपि दृश्यन्ते' सूत्र से विच् प्रत्यय हुआ। चकार की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, इकार उच्चारणार्थ है, वकार को 'अपृक्तः एकाल् प्रत्ययः' से अपृक्त संज्ञा, 'वेरपृक्तस्य' से वलोप का होने विच् प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हो जाता है। सुगणि इस स्थिति में 'णेरनिटि' इस सूत्र से णिच् प्रत्यय सम्बन्धी इकार का लोप हुआ। सुगण् इस अवस्था में स्वादि उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर सुगण् यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – क्विप् च 3/2/76

वृत्ति – अयमपि दृश्यते।

सूत्रार्थ – धातु मात्र से क्विप् प्रत्यय भी होता है।

उदाहरण – उखास्रत्। पर्णध्वत्। वाहभ्रट्।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में क्विप् यह प्रथमा एकवचन का पद है। च यह अव्यय पद है। क्विप् प्रत्यय में कुछ शेष नहीं रहता है। आदि क् का लशक्वतद्धिते सूत्र से इत् संज्ञा। अन्त्य प् का हलन्त्यम् से इत् संज्ञा। तथा दोनों इत् संज्ञक का तस्य लोपः से लोप हुआ। इकार उच्चारणार्थक था अतः उसकी निवृत्ति स्वतः हो जाती है। शेष बचे वकार का लोप वेरपृक्तस्य से हो जाता है। अतः क्विप् का कुछ भी शेष नहीं रहता है। इसलिए ऐसे लोप को संक्षेप में सर्वापहारी लोप कहते हैं। सर्वापहारी लोप हो जाने पर भी स्थानिवद्भाव के कारण उसमें प्रत्यय लक्षण द्वारा प्रत्यय का गुण धर्म रहता ही है। तात्पर्य यह कि लोप हो जाने पर भी प्रत्यय को मानकर होने वाले कार्य हो सकतें हैं। यह कृत् प्रकरण का प्रत्यय है, अतः लोप हो जाने पर भी शब्द क्विप्–प्रत्ययान्त बना रहता है। प्रत्ययान्त होने से कृदन्त भी बना रहेगा। कृदन्त मानकर कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा हो सकेगी। कृत् के परे होने से ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् आदि सूत्रों की प्रवृति भी हो सकेगी। इसी प्रकार कहीं पित् या कित् को मानकर के होने वाले कार्यों भी हो सकते है।

उखायाः स्रंसते उखास्त्रत् – उखा इस पञ्चम्यन्त के उपपद में रहते स्रंस् (स्रंसु अवस्रसने) धातु से परे 'क्विप् च' सूत्र से क्विप् प्रत्यय हुआ। क्विप् का भी सर्वापहारी लोप होता है। क्विप् को परे मानकर 'अनिदितां हल् उपधायाः क्ङिति' सूत्र से स्रंस् में विद्यमान अनुस्वार के स्थानी नकार का लोप हुआ। उखा़स्रस् इस स्थिति में स्वादि उत्पत्ति एवं तत्सम्बन्धी कार्य होकर उखस्रत् यह रूप सिद्ध हुआ।

पर्णात् ध्वंसते पर्णध्वत् – पर्ण इस पञ्चम्यन्त के उपपद में रहते ध्वंस् (ध्वंसु अवस्रंसने) धातु से परे 'क्विप् च' सूत्र से क्विप् प्रत्यय हुआ। क्विप् का भी सर्वापहारी लोप होता है। क्विप् को परे मानकर 'अनिदितां हल् उपधायाः क्ङिति' सूत्र से ध्वंस् में विद्यमान अनुस्वार के स्थानी नकार का लोप हुआ। पर्ण+ध्वस् इस स्थिति में स्वादि उत्पत्ति एवं तत्सम्बन्धी कार्य होकर पर्णध्वत् यह रूप सिद्ध हुआ।

वाहाद् भ्रंशते वाहभ्रट् – वाह इस पञ्चम्यन्त के उपपद में रहते भ्रंश् (भ्रंशु अवस्रंसने) धातु से परे 'क्विप् च' सूत्र से क्विप् प्रत्यय हुआ। क्विप् का भी सर्वापहारी लोप होता है। क्विप् को परे मानकर 'अनिदितां हल् उपधायाः क्ङिति' सूत्र से स्रंस् में विद्यमान अनुस्वार के स्थानी नकार का लोप हुआ। वाह्भ्रश् इस स्थिति में स्वादि उत्पत्ति एवं तत्सम्बन्धी कार्य होकर वाहभ्रट् एवं वाहभ्रड् यह रूप सिद्ध हुए।

सूत्र – सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये 3/2/78

वृत्ति – अजात्यर्थे सुपि धातोर्णिनिस्ताच्छील्ये द्योत्ये।

सूत्रार्थ – जाति अर्थ में विद्यमान सुबन्त से भिन्न सुबन्त उपपद में रहते, धातु से णिनि प्रत्यय होता है, यदि कर्ता का अर्थ शील (स्वभाव) द्योतित हो तो।

उदाहरण – उष्णभोजी।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में सुपि और अजातौ ये सप्तमी एकवचन के पद हैं। णिनिः यह प्रथमा एकवचन का पद है। ताच्छील्ये यह सप्तमी एकवचन का पद है।

उष्णं भुङ्क्ते तच्छीलम् उष्णभोजी – उष्ण इस जाति अर्थ में विद्यमान सुबन्त से भिन्न सुबन्त के उपपद में रहते भुज् (पालनाभ्यवहारयोः) धातु से परे 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' सूत्र कर्ता का अर्थ स्वभाव द्योतित होने के कारण णिनि प्रत्यय हुआ। उष्ण+भुज्+णिनि इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। उष्ण+भुज्+इन् इस स्थिति में 'पुगन्तलघूपधस्य च' सूत्र से गुण हुआ। उष्ण+भोज्+इन् इस स्थिति में वर्ण सम्मेलन तथा स्वादि कार्य होकर उष्णभोजी यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – मनः 3/2/82

वृत्ति – सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात्।

सूत्रार्थ – सुबन्त के उपपद में रहते मन् धातु से णिनि प्रत्यय होता है।

उदाहरण – दर्शनीयमानी।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में मनः यह पञ्चमी एकवचन का पद है।

दर्शनीयं मन्यते दर्शनमानी – इस रूप की सिद्धि उष्णभोजी के सदृश होती है।

24.4 सारांश

कृदन्त के अन्तर्गत आने वाले पूर्वकृदन्त प्रकरण से सम्बद्ध इस इकाई में हमने ण्वुल्, तृच्, णिनि, ल्यु, अच्, क, अण्, ट, खश्, खच्, मनिन्, क्वनिप्, वनिप्, विच् और क्विप् इन पन्द्रह प्रत्ययों का अध्ययन किया। ये पन्द्रह प्रत्यय कृदतिङ् इस अधिकार में पढ़े जाने के कारण कृ त् संज्ञक कहलाते हैं। इन प्रत्ययों का कर्तरि कृत् सूत्र द्वारा कर्ता अर्थ में विधान है परन्तु अर्थ विशेष के कतिपय ऐसे भी स्थल दृष्टिगोचर हुए हैं जहाँ इसी कर्ता अर्थ के अन्तर्गत ही गेह, हेतु, ताच्छील्य, आनुलोम्य आदि अर्थ भी द्योत्य अथवा वाच्य हो रहे हैं। इसके अलावा इस इकाई के सूत्रों में हमने अनेक ऐसे भी स्थलों को जाना है जहाँ सामान्यतः धातु मात्र से विहित कृत् प्रत्ययों का किसी उपसर्ग, कर्म/अधिकरण आदि कारक अथवा भिक्षा, सेना आदि सुबन्तों के उपपद में रहने पर विधान होता है।

प्रथम इकाई में हमारे द्वारा विस्तार पूर्वक पठित वाऽसरूप विधि इस इकाई में भी समान रूप से प्रासंगिक है यह भी हम द्वितीय इकाई के अपने इस अध्ययन में सम्यक् प्रकार से जान चुके हैं।

24.5 शब्दावली

उपपद – किसी सुबन्त अथवा उपसर्ग आदि के उपपद (समीप अथवा प्रायःपूर्व में) के रहने पर कृदन्त प्रकरण में कुछ प्रत्यय विहित होते है। जहाँ उपपद युक्त धातु के साथ प्रत्यय होते है, उन स्थलों में उपपद का धातु के साथ उपपद समास होता है। कृत् प्रत्यय के लगने के बाद कृदन्त शब्द बनते हैं। कृदन्त संज्ञा होने से प्रातिपदिक संज्ञा होती ही है। उसके बाद सु आदि प्रत्ययों के होने के बाद पद बनते हैं।

नन्द्यादि गण – नन्दनः, वाशनः, मदनः, दूषणः, साधनः, वर्धनः, शोभनः, रोचनः, सहनः, तपनः, दमनः, जल्पनः, रमणः, दर्पणः, संक्रन्दनः, संकर्षणः, संहर्षणः, जनार्दनः, यवनः, मधुसुदनः, विभीषणः, लवणः, चित्तविनाशनः, कुलदमनः, शत्रुदमनः।

ग्रह्यादि गण – ग्राही, उत्साही, उद्दाही, उद्भासी, स्थायी, मन्त्री, संमर्दी, निरक्षी, निश्रावी, निवापी, निशायी, अयाची, अव्याहारी, असंव्याहारी, अव्राजी, अवादी, अवःसी, अकारी, अह्वारी, अविनायी, विशयी, विषयी, विशायी, विषायी, अभिभावी, अपराधी, उपरोधी, परिभवी, परिभावी।

पचादि गण – पच, वच, वप, वद, चल, पत, नदट्, भषट्, प्लवट्, चरट्, गरट्, तरट्, चोरट्, गाहट्, सूरट्, देवट्, दोषट्, जर (रज), मर (मद), क्षम (क्षप), सेव, मेष, कोप, कोष, मेध, नर्त, व्रण,दर्श, सर्प, दम्भ, दर्प, जारभर, श्वपच।

मूलविभुजादि गण – मूलविभुज, नखमुच, काकगुह, कुमुद, महीध्र, कुध्र, गिध्र।

ताच्छील्य – सः (धात्वर्थः) शीलं (स्वभावः) यस्य स तच्छीलः। अर्थात् वह (धात्वर्थ) शील (स्वभाव) है जिसका वह तच्छील (धात्वर्थ के स्वभाव वाला) कहलाता है। तच्छीलस्य भावः ताच्छील्यम्। अर्थात् धात्वर्थ के स्वभाव वाले के भाव (धर्म) से युक्त होना ही ताच्छील्य अथवा तत्स्वभावता कहलाता है।

24.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी, गोरखपुरः गीताप्रेस।
2. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या गोविन्दाचार्य, लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्लीः चौखम्भा सुरभारती।
3. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, धरानन्द, लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्लीः मोतीलाल बनारसी दास।
4. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, भीमसेन, लघुसिद्धान्तकौमुदी. (भाग–1–6), दिल्लीः भैमी प्रकाशन।
5. शास्त्री, चारुदेव. व्याकरण चन्द्रोदय, (भाग–1–6), दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास।
6. वरदराजाचार्य, सम्पा० एवं हिन्दी सिंह, सत्यपाल. लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्लीः शिवालिक पब्लिकेशन।
7. Apte, V.S. The Students, Guide to Sanskrit Composition, Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.
8. Kale, M.R. Higher Sanskrit Grammar, MLBD, Delhi.
9. Kanshi Ram, Laghusiddhantkaumudi, (Vol. 1&3), MLBD, Delhi, 2009.
10. Ballantyne, James R., Laghusiddhantkaumudi, Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

24.7 अभ्यास प्रश्न

- कारकः और कर्ता की प्रक्रिया में क्या भेद है?
- ण्वुल् और तृच् प्रत्यय किन अर्थों में होते हैं?
- आर्धधातुक संज्ञा किन प्रत्ययों की होती है?

- सार्वधातुक संज्ञा होने का क्या निमित्त होता है?
- खच् और खश् प्रत्ययों में अन्तर बताएँ।
- उष्णभोजी की रूप सिद्धि कीजिए।
- अण् प्रत्यय और क प्रत्यय किन अर्थों में होते हैं? बताईये।
- कर्म के उपपद में रहते कौन–कौन से प्रत्यय होते हैं?
- निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि कीजिए – नन्दनः, पचः, ग्राही, कुम्भकारः, गोदः, कुरुचरः, जन्मेजयः।

इकाई 25 पूर्वकृदन्त प्रकरण (द्वितीय भाग) (आत्ममाने खश्च से म्वोश्च सूत्र तक)

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त शिक्षार्थी–

- आत्ममाने खश्च से लेकर म्वोश्च तक के सूत्रों के अध्ययन के माध्यम से सूत्र, सूत्रार्थ एवं उदाहरणों से परिचित हो सकेंगे।
- पूर्वकृदन्त के अन्तर्गत आने वाले इन सात प्रत्ययों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे – खश्, क्वनिप्, ड, क्त, क्तवतु, कानच् और क्वसु।
- इस इकाई के अन्तर्गत आप कतिपय भूतार्थक कृत् प्रत्ययों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- निष्ठा संज्ञा एवं निष्ठा संज्ञक प्रत्ययों को जान सकेंगे।
- क्त और क्तवतु प्रत्यय सम्बन्धी तकार के स्थान पर आदेश के रूप में होने वाले वर्णों को जान सकेंगे।
- लट् लकार के स्थान पर विहित होने वाले प्रत्ययों का भी ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- भिन्न–भिन्न अनुबन्धों के विधान के कारण प्राप्त होने वाले फल को भी जान सकेंगे; तथा
- इन प्रत्ययों के संयोग से निष्पन्न होने वाले शब्दों का अवबोधपूर्वक प्रयोग करने में सक्षम हो सकेंगे।

25.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने पूर्वकृदन्त प्रकरण के प्रथम भाग के अन्तर्गत आने वाले ण्वुल्, तृच्, णिनि, ल्यु, अच्, क, अण्, ट, खश्, खच्, मनिन्, क्वनिप्, वनिप्, विच् और क्विप् प्रत्ययों का

भली–भाँति परिचय प्राप्त किया था। अब हम इस इकाई में हम पूर्वकृदन्त प्रकरण के द्वितीय भाग की चर्चा करेंगे। यहाँ विशेष रूप से ध्यान रखने की बात यह है कि इस इकाई में आने वाले प्रत्ययों की केवल कृत् संज्ञा होगी कृत्य संज्ञा नहीं।

इस प्रकार वर्तमान इकाई में हम इस प्रकरण के अन्तर्गत आने वाले आत्ममाने खश्च 3/2/82 सूत्र से लेकर म्वोश्च 8/2/65 सूत्र तक की चर्चा करेंगे। इस प्रकार इन दोनों सूत्रों के मध्य आने वाले समस्त सूत्रों तथा उनसे विभिन्न अर्थों में होने वाले प्रत्ययों को विस्तार पूर्वक समालोचना प्रकृत इकाई के माध्यम से की जा रही है।

जैसा कि हम जान चुके हैं कि कृत् प्रत्यय सामान्यतः धातु मात्र से विहित होते हैं परन्तु अनेक ऐसे भी प्रयोग–स्थल हैं जहां किसी शब्द विशेष अथवा उपसर्गों के उपपद में होने पर ही धातु से इन प्रत्ययों का विधान सम्भव होना देखा जाता है। ऐसे विशिष्ट स्थलों का परिचय भी इस इकाई के अध्ययन के द्वारा हमें प्राप्त हो सकेगा। इसके साथ ही इस इकाई को पढ़ने के बाद निष्ठा संज्ञा, निष्ठा संज्ञक प्रत्ययों एवं तत्सम्बद्ध अथवा तदाश्रित कार्यों से भी हमारा परिचय सम्भव हो पायेगा। इसके साथ ही इस इकाई में लिट् लकार के स्थान पर होने वाले कानच् एवं क्वसु प्रत्ययों का भी अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अन्तर्गत खश, क्वनिप्, ड, क्त, क्तवतु, कानच् और क्वसु प्रत्ययों की चर्चा की जायेगी। इसके साथ ही इन कृत् प्रत्ययों के संयोजन से निष्पन्न होने वाले शब्दों की प्रक्रिया भी प्रकृत पाठ में प्रदर्शित की जायेगी।

25.2 पूर्वकृदन्त प्रकरण (द्वितीय भाग) के सूत्र, वृत्ति, सूत्रार्थ, उदाहरण, व्याख्या और रूपसिद्धि (आत्मने खष्च से क्वोष्च सूत्र तक)

सूत्र – आत्ममाने खश्च 3/2/83

वृत्ति – स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्याच्चाण्णिनिः।

सूत्रार्थ – जब मन् धातु का कर्ता उसका कर्म भी हो तो सुबन्त के उपपद में रहते मन् धातु से खश् और णिनि प्रत्यय होते हैं।

उदाहरण – पण्डितमात्मानं मन्यते पण्डितम्मन्यः। पण्डितमानी।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में आत्ममाने यह सप्तमी एकवचन का पद है। खः यह प्रथमा एकवचन का पद है। च यह अव्यय पद है। इस सूत्र के अनुसार जब मन् धातु का कर्ता मन् धातु का कर्म भी हो (अर्थात् अपने को मानता है, ऐसा अर्थ हो) अर्थात् जब मन् धातु का कर्ता और कर्म एक ही हो तो सुबन्त के उपपद में रहते मन् धातु से खश् और णिनि प्रत्यय होते हैं।

णिनि में णकार और अन्त्य इकार इत्संज्ञक है, अनुबन्धलोप होकर इन् बचता है। खश् में खकार और शकार की इत्संज्ञा और लोपादि कार्य होकर अ शेष रहता है। खित् का प्रयोजन

मुम् आगम और शित् का प्रयोजन सार्वधातुक संज्ञा करना है। णिनि होने की स्थिति में शित् न होने के कारण श्यन् आदि नहीं होंगे और खित् न होने के कारण मुम् आगम भी नहीं हो सकेगा।

पण्डितमात्मानं मन्यते पण्डितम्मन्यः – यहाँ पर पण्डित यह कर्म होने के साथ–साथ मन् धातु का कर्ता भी है अतः मन् धातु से परे 'आत्ममाने खश्च' इस सूत्र से खश् प्रत्यय हुआ। पण्डित+मन्+खश् इस स्थिति में प्रत्यय के खकार एवं शकार का अनुबन्धलोप हुआ। पण्डित+मन्+अ इस स्थिति में शित् प्रत्यय की सार्वधातुक संज्ञा हुई। मन् धातु दिवादिगण में पठित है अतः सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहने पर 'दिवादिभ्यः श्यन्' इस सूत्र से श्यन् विकरण हुआ। पण्डित+मन्+श्यन्+अ इस अवस्था में श्यन् के अनुबन्धों का लोप हुआ। पण्डित+मन्+य+अ इस स्थिति में 'अतो गुणे' इस सूत्र से श्यन् सम्बन्धी यकारोत्तरवर्ती अकार और खश् प्रत्यय सम्बन्धी अकार के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश हुआ। पण्डित+मन्+य इस स्थिति में 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इस सूत्र से खिदन्त उत्तर–पद रहते अजन्त पूर्व–पद को मुम् का आगम हुआ। मुम् में मकार शेष रहता है अन्य अनुबन्धों का लोप हो जाता है। पण्डित+म्+मन्+य इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन हुआ। पण्डितम्मन्य इस स्थिति में स्वादि उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य हो कर पण्डितम्मन्यः यह रूप सिद्ध हुआ।

पण्डितमानी – यहाँ पर पण्डित यह कर्म होने के साथ–साथ मन् धातु का कर्ता भी है अतः मन् धातु से परे 'आत्ममाने खश्च' इस सूत्र से खश् न होकर पक्ष में णिनि प्रत्यय हुआ। पण्डित+मन्+णिनि इस स्थिति में प्रत्यय के णकार एवं अन्त्य इकार का अनुबन्धलोप हुआ। पण्डित+मन्+इन् इस स्थिति में प्रत्यय णित् होने के कारण 'अत उपधायाः' सूत्र से उपधा में विद्यमान अकार को वृद्धि होकर आकार हुआ। पण्डित+मान्+इन् इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन होकर पण्डितमानिन् बना। तत्पश्चात् अन्य स्वादि कार्य होकर पण्डितमानी यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – खित्यनव्ययस्य 6/3/66

वृत्ति – खिदन्ते परे पूर्वपद स्य ह्रस्वः न तु अव्ययस्य। ततो मुम्।

सूत्रार्थ – खिदन्त उत्तर पद के परे रहते अव्यय भिन्न पूर्व–पद को ह्रस्व होता है। ह्रस्व करने के बाद मुम् होता है।

उदाहरण – कालिम्मन्या।

व्याख्या – यह विधि सूत्र है। इस सूत्र में खिति यह सप्तमी एकवचन का पद है। अनव्ययस्य षष्ठी एकवचन का पद है। खित् प्रत्यय हो अन्त में जिसके ऐसे उत्तर–पद के पर में रहने पर (अजन्त) पूर्व–पद के अन्त्य स्वर को ह्रस्व हो जाता है, परन्तु यह आदेश अव्यय के स्थान पर नहीं होता अर्थात् पूर्व–पद यदि अव्यय हो तो उसके अन्त्य स्वर को ह्रस्व नहीं हो पाता है।

आत्मानं कालीं मन्यत इति कालिम्मन्या – इस प्रयोग में काली शब्द कर्म होने के साथ–साथ मन् धातु का कर्ता भी है। अतः काली शब्द के उपपद में रहते मन् धातु से खश् प्रत्यय होकर तथा अन्य कार्य पूर्ववत् होकर काली+मन्य बना। इस स्थिति में 'खित्यनव्ययस्य' सूत्र से खिदन्त पद उत्तर–पद में रहते पूर्व–पद के अन्त्य स्वर ईकार को ह्रस्व इकार हुआ। कालिमन्य इस स्थिति में खिदन्त उत्तर–पद रहते अजन्त पूर्व–पद को मुम् का आगम होकर कालिम्मन्य बना। स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् प्रत्यय होकर रूप तथा स्वादि उत्पत्ति एवं तत्सम्बन्धी कार्य होकर कालिम्मन्या यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – करणे यजः 3/2/85

वृत्ति – करणे उपपदे भूतार्थे यजेर्णिनिः कर्तरि।

सूत्रार्थ – करणार्थक उपपद में रहते भूतकाल की क्रिया के वाचक यज् धातु से कर्ता अर्थ में णिनि प्रत्यय होता है।

उदाहरण – सोमेनेष्टवान् सोमयाजी। अग्निष्टोमयाजी।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। करणे यह सप्तमी एकवचन का पद है। यजः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। ध्यातव्य है कि जहां–जहां पर उपपद के रहने पर कृत् प्रत्यय होते हैं वहां–वहां उपपद का धातु के साथ उपपद–समास अवश्य होता है।

सोमेनेष्टवान् सोमयाजी – यहाँ सोम इस करण के उपपद में रहते यज् धातु से परे 'करणे यजः' इस सूत्र से णिनि प्रत्यय हुआ। सोम+यज्+णिनि इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। सोम+यज्+इन् इस स्थिति में णित् प्रत्यय के परे रहते 'अत उपधायाः' सूत्र से धातु के उपधा में विद्यमान अकार को वृद्धि होकर आकार हुआ। सोम+याज्+इन् इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन होकर सोमयाजिन् बना। तत्पश्चात् स्वादि उत्पत्ति एवं तत्सम्बन्धी कार्य होकर सोमयाजी यह रूप सिद्ध हुआ।

अग्निष्टोमेन इष्टवान् अग्निष्टोमयाजी – यहाँ अग्निष्टोम इस करण के उपपद में रहते यज् धातु से परे 'करणे यजः' इस सूत्र से णिनि प्रत्यय हुआ। अग्निष्टोम+यज्+णिनि इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। अग्निष्टोम+यज्+इन् इस स्थिति में णित् प्रत्यय के परे रहते 'अत उपधायाः' सूत्र से धातु के उपधा में विद्यमान अकार को वृद्धि होकर आकार हुआ। अग्निष्टोम+याज्+इन् इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन होकर अग्निष्टोमयाजिन् बना। तत्पश्चात् स्वादि उत्पत्ति एवं तत्सम्बन्धी कार्य होकर अग्निष्टोमयाजी यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – दृशेः क्वनिप् 3/2/94

वृत्ति – कर्मणि भूते।

सूत्रार्थ – कर्म के उपपद रहते भूतकाल की क्रिया के वाचक दृश् धातु से क्वनिप् प्रत्यय होता है।

उदाहरण – पारं दृष्टवान् पारदृश्वा।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में दृशेः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। क्वनिप् यह प्रथमा एकवचन का पद है। कर्तरि कृत् के अनुसार यह प्रत्यय भी कर्ता अर्थ में ही होता है। किन्तु इसका उपपद कर्म कारक वाला अवश्य होना चाहिए। क्वनिप् में अनुबन्ध के लोप होने पर वन् शेष रहता है।

पारं दृष्टवान् पारदृश्वा – पार इस कर्म के उपपद रहते भूतकालिक कर्ता के वाचक दृश् धातु से परे 'दृशेः क्वनिप्' इस सूत्र से क्वनिप् प्रत्यय हुआ। पार+दृश्+क्वनिप् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। पार+दृश+वन् इस स्थिति में आर्धधातुक प्रत्यय होने के कारण धातु को लघूपध गुण प्राप्त था जिसका कित् होने के कारण निषेध भी हो गया। पारदृश्वन् इस स्थिति में स्वादि उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर पारदृश्वा यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – राजनि युधि कृञः 3/2/97

वृत्ति – क्वनिप् स्यात्। युधिरन्तर्भावितण्यर्थः।

सूत्रार्थ – राजन् इस कर्म के उपपद रहते भूतकाल की क्रिया के वाचक युध् और कृञ् धातुओं से क्वनिप् प्रत्यय होता है। यहां युध् धातु अन्तर्भावित ण्यर्थ वाला है।

उदाहरण – राजानं योधितवान् राजयुध्वा। राजकृत्वा।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में राजनि और युधि ये सप्तमी एकवचन के पद हैं। कृञः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। कर्तरि कृत् के अनुसार यह प्रत्यय भी कर्ता अर्थ में ही होता है किन्तु कर्म कारक वाले उपपद के रूप में राजन् होना चाहिए। इस सूत्र में युध् धातु अन्तर्भावित ण्यर्थ वाला है अर्थात् धातु में णिच् प्रत्यय का अर्थ (प्रेरणा) विद्यमान है।

राजानं योधितवान् राजयुध्वा – राजन् इस कर्म के उपपद रहते भूतकालिक कर्ता के वाचक युध् धातु से परे 'राजनि युधि कृञः' इस सूत्र से क्वनिप् प्रत्यय हुआ। राजन्+युध्+क्वनिप् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। राज+युध्+वन् इस स्थिति में आर्धधातुक प्रत्यय होने के कारण धातु को लघूपध गुण प्राप्त था जिसका कित् होने के कारण निषेध भी हो गया। राज+युध्+वन् इस स्थिति में स्वादि उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर राजयुध्वा यह रूप सिद्ध हुआ।

राजानं कृतवान् राजकृत्वा – राजन् इस कर्म के उपपद रहते भूतकालिक कर्ता के वाचक कृ धातु से परे 'राजनि युधि कृञः' इस सूत्र से क्वनिप् प्रत्यय हुआ। राजन्+कृ+क्वनिप् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। राज+कृ+वन् इस स्थिति में आर्धधातुक प्रत्यय होने के कारण धातु को लघूपध गुण प्राप्त था जिसका कित् होने के कारण निषेध भी हो गया। राज+कृ+वन् इस स्थिति में 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' इस सूत्र से पित् कृत् प्रत्यय

वन् के परे रहते तुक् का आगम हुआ। तुक् के अनुबन्धों का लोप होने के पश्चात् तकार शेष रहता है। राज+कृ+त्+वन् इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन होकर राजकृत्वन् बना। तत्पश्चात् स्वादि उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर राजकृत्वा यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – सहे च 3/2/96

वृत्ति – कर्मणीति निवृत्तम्।

सूत्रार्थ – यहाँ कर्मणि की अनुवृत्ति नहीं आती है। सह के उपपद रहते भूतकाल की क्रिया के वाचक युध् और कृञ् धातुओं से क्वनिप् प्रत्यय होता है।

उदाहरण – सह योधितवान् सहयुध्वा। सहकृत्वा।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में सहे यह सप्तमी एकवचन का पद है। च यह अव्यय पद है। यहाँ कर्मण्यण् से आ रही कर्मणि ही अनुवृत्ति समाप्त हो गयी है। सह यह अव्यय पद है और अव्यय कर्म नहीं हो सकता है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है कि सह इस अव्यय के उपपद रहते भूतकाल की क्रिया के वाचक युध् और कृञ् धातुओं से क्वनिप् प्रत्यय होता है।

सह योधितवान् सहयुध्वा – सह इस कर्म के उपपद रहते भूतकालिक कर्ता के वाचक युध् धातु से परे 'सहे च' इस सूत्र से क्वनिप् प्रत्यय हुआ। सह+युध्+क्वनिप् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। सह+युध+वन् इस स्थिति में आर्धधातुक प्रत्यय होने के कारण धातु को लघूपध गुण प्राप्त था जिसका कित् होने के कारण निषेध भी हो गया। सहयुवन् इस स्थिति में स्वादि उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर सहयुध्वा यह रूप सिद्ध हुआ।

सह कृतवान् सहकृत्वा – सह इस कर्म के उपपद रहते भूतकालिक कर्ता के वाचक कृ धातु से परे 'सहे च' इस सूत्र से क्वनिप् प्रत्यय हुआ। सह+कृ+क्वनिप् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। सह+कृ+वन् इस स्थिति में आर्धधातुक प्रत्यय होने के कारण धातु को लघूपध गुण प्राप्त था जिसका कित् होने के कारण निषेध भी हो गया। सह+कृ+वन् इस स्थिति में 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' इस सूत्र से पित् कृत् प्रत्यय वन् के परे रहते तुक् का आगम हुआ। तुक् के अनुबन्धों का लोप होने के पश्चात् तकार शेष रहता है। सह+कृ+त्+वन् इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन होकर सहकृत्वन् बना। तत्पश्चात् स्वादि उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर सहकृत्वा यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – सप्तम्यां जनेर्डः 3/2/97

सूत्रार्थ – सप्तम्यन्त के उपपद रहते भूतकाल की क्रिया–वाचक जन् धातु से ड प्रत्यय होता है।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में सप्तम्यां यह सप्तमी एकवचन का पद है। जनेः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। डः यह प्रथमा एकवचन का पद है। डकार की चुटू से इत्संज्ञा तथा लोपादि कार्य होने पर अ शेष बचता है। डित् का फल डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः से भ संज्ञा के विना भी टि का लोप करना है।

सूत्र – तत्पुरुषे कृति बहुलम् 6/3/14

वृत्ति – ङेरलुक्

सूत्रार्थ – तत्पुरुषदृसमास में कृदन्त उत्तरपद के परे रहते सप्तमी का बहुल से अलुक् (लोप न होना) होता है।

उदाहरण – सरसिजम्, सरोजम्।

व्याख्या – यह अलुक् विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में तत्पुरुषे और कृति ये सप्तमी एकवचन के पद हैं। बहुलम् यह प्रथमा एकवचन का पद है। यह सूत्र समास में अलुक् का विधान करता है। ध्यातव्य है कि समास में प्रातिपदिक संज्ञा के बाद सुपो धातुप्रातिपदिकयोः से प्रातिपादिक के अवयव सुप् का लुक् प्राप्त होता है, उसका निषेध यह सूत्र करता है। इस प्रकार यह सूत्र कहता है कि यदि तत्पुरूष समास हुआ हो और कृदन्त उत्तरपद में हो तथा समास का पूर्वपद सप्तमी विभक्ति में हो तो उसका लुक् न हो। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यह विधि बहुलता से होती है।

सरसिजम् (अलुक् पक्ष में) – सरस्+ङि इस सप्तम्यन्त पद के उपपद में रहते भूतकालिक जन् धातु से परे 'सप्तम्यां जनेर्डः' इस सूत्र से ड प्रत्यय हुआ। सरस्+ङि+जन्+ड इस स्थिति में प्रत्यय के डकार का अनुबन्धलोप हुआ। सरस्+ङि+जन्+अ इस स्थिति में डित्त्वसामर्थ्य से जन् के टि भाग (अन्) का लोप हो जाता है। सरस्+ङि+ज्+अ इस स्थिति में समस्तपद होने के कारण सरस् सम्बन्धी सप्तमी विभक्ति का प्रत्यय ङि का लोप 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से प्राप्त था जिसका निषेध 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' सूत्र से तत्पुरुषदृसमास में कृदन्त उत्तरपद रहते पूर्वपद सम्बन्धी सप्तमी विभक्ति के प्रत्यय का लोप बहुल से होता है। अतः यहाँ पर लोप नहीं हुआ। सरसिज इस स्थिति में स्वादि उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य हो कर सरसिजम् यह रूप सिद्ध हुआ।

सरोजम् (लुक् पक्ष में) – जब विभक्ति का लोप हो जाता है तो अन्त्य सकार को रुत्व तथा उत्व होकर सर+उ+ज इस स्थिति में 'आद् गुणः' इस सूत्र से गुण होकर सरोज बना। तत्पश्चात् स्वादि उत्पत्ति होकर एवं तत्सम्बन्धी कार्य होकर सरोजम् यह रूप सिद्ध हो जाता है।

सूत्र – उपसर्गे च संज्ञायाम् 3/2/99

सूत्रार्थ – उपसर्ग के उपपद में होने पर भूतकाल के अर्थ में विद्यमान जन् धातु से ड प्रत्यय हो, संज्ञा के विषय में।

उदाहरण – प्रजा स्यात् सन्ततौ जने।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में उपसर्गे और संज्ञायाम् ये सप्तमी एकवचन के पद हैं। च यह अव्यय पद है। उपसर्ग के उपपद रहने पर भूतकाल की क्रिया के वाचक जन् धातु से ड प्रत्यय होता है, संज्ञा के विषय में अर्थात् निष्पन्न पद से यदि किसी की संज्ञा (नाम) अभिप्रेत हो तो।

–

प्रजाता इति प्रजा – प्र उपसर्ग के उपपद रहते भूतकाल की क्रिया के वाचक जन् धातु से ड प्रत्यय हुआ। प्र+जन्+ड इस स्थिति में प्रत्यय के आदि डकार का अनुबन्धलोप हुआ। प्र+जन्+अ इस स्थिति में शेष प्रत्यय अकार डित् होने के कारण उसके सामर्थ्य से धातु के टि भाग अन् का लोप हुआ। प्र+ज्+अ इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन तथा स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् प्रत्यय होकर प्रजा बना। तत्पश्चात् स्वादि कार्य होकर प्रजा यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – क्तक्तवतू निष्ठा 1/1/26

वृत्ति – एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः।

सूत्रार्थ – क्त और क्तवतु इन दोनों प्रत्ययों की निष्ठा संज्ञा होती है।

व्याख्या – यह संज्ञा सूत्र है। इस सूत्र में क्तक्तवतू यह प्रथमा द्विवचन का पद है। निष्ठा यह प्रथमा एकवचन का पद है। व्याकरण परम्परा में जहां–जहां निष्ठा संज्ञा कहा जाए वहां–वहां क्त और क्तवतु ये दोनों प्रत्यय समझने चाहिए। यहां निष्ठा संज्ञा और क्त और क्तवतु ये दोनों प्रत्यय संज्ञी हैं। क्त और क्तवतु में ककार की लशक्वतद्धिते से तथा क्तवतु में उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् से इत्संज्ञा होकर तस्य लोपः से लोप होता है। क्त और क्तवतु में क्रमशः त और तवत् शेष रहता है। कित्करण का प्रयोजन गुण आदि का निषेध करना है।

सूत्र – निष्ठा 3/2/102

वृत्ति – भूतार्थवृत्तोर्धातोर्निष्ठा स्यात्। तत्र तयोरेवेति भावकर्मणोः क्तः, कर्तरि कृदिति कर्तरि क्तवतुः। उकावितौ।

सूत्रार्थ – भूतकाल के अर्थ में वर्तमान धातुओं से निष्ठा संज्ञक क्त और क्तवतु प्रत्यय होते हैं। इनमें क्त प्रत्यय तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः, से भाव और कर्म में होता है तथा क्तवतु प्रत्यय कर्तरि कृत् सूत्र से कर्ता अर्थ में होता है। उकार एवं ककार की इत्संज्ञा होती है।

उदाहरण – स्नातं मया। स्तुतस्त्वया विष्णुः। विश्वं कृतवान् विष्णुः।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में निष्ठा यह प्रथमा एकवचन का पद है। यहाँ तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः के नियमानुसार क्त प्रत्यय भाव और कर्म इन दोनों अर्थों में तथा कर्तरि कृत् के नियमानुसार क्तवतु प्रत्यय केवल कर्ता के अर्थ में होता है। भाव और कर्म अर्थ में क्त प्रत्यय होने से इसका कर्ता तृतीयान्त होगा। किन्तु क्तवतु प्रत्यय कर्ता में होने से इसका कर्ता प्रथमान्त होगा। तिङ् और शित् से भिन्न होने के कारण ये प्रत्यय आर्धधातुक संज्ञक होते हैं। क्त और क्तवतु में ककार तथा क्तवतु में उकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है तथा क्रमशः त और तवत् शेष रहता है। कित्करण का प्रयोजन गुण आदि का निषेध करना स्पष्ट ही है।

(क्त) स्नातं मया – स्ना (ष्णा शौचे) धातु से भूतकाल के अर्थ में विद्यमान होने पर 'निष्ठा' इस सूत्र से क्त और क्तवतु प्रत्यय होते हैं। यहाँ पर क्त हुआ। स्ना+क्त इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी ककार का अनुबन्धलोप हुआ। स्ऩात इस अवस्था में स्वादि उत्पत्ति एवं तत्सम्बन्धी कार्य होकर स्नातम् यह रूप सिद्ध हुआ।

(क्तवतु) विश्वं कृतवान् विष्णुः – भूत कालिक कृ धातु से कर्ता अर्थ में 'निष्ठा' इस सूत्र से क्तवतु प्रत्यय हुआ। कृ+क्तवतु इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। कृ+वत् इस स्थिति में स्वादि उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर कृतवान् यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः 8/2/42

वृत्ति – रदाभ्यां परस्य निष्ठातस्य नः स्यात्, निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दस्य च। शृ हिंसायाम्। ऋत इत्। रपरः। णत्वम्।

सूत्रार्थ – रेफ (र्) अथवा दकार से परे निष्ठा तकार के स्थान में नकार आदेश और उससे पूर्व में स्थित धातु के दकार को नकार भी होता है।

उदाहरण – शीर्णः। भिन्नः। छिन्नः।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में रदाभ्यां यह पञ्चमी द्विवचन का पद है। निष्ठातः, पूर्वस्य और दः ये षष्ठी एकवचन के पद हैं। नः यह प्रथमा एकवचन का पद है। च यह अव्यय पद है। इस प्रकार यह सूत्र रेफ (र्) अथवा दकार से परे निष्ठा संज्ञक प्रत्यय (क्त और क्तवतु) के तकार के स्थान में नकार का आदेश करता है और यदि निष्ठा संज्ञक प्रत्यय से पूर्व में स्थित धातु के अन्त में दकार हो तो उसके स्थान पर भी नकार (आदेश) का विधान करता है। संक्षेप में कहा जाए तो यह सूत्र दो कार्य करता है –

क्त और क्तवतु प्रत्यय के तकार के स्थान पर नकार आदेश तथा इन प्रत्ययों के पहले यदि धातु के अन्त में दकार हो तो उसके स्थान पर भी नकार आदेश का विधान।

शीर्णः – शृ (हिंसायाम्) धातु से परे 'निष्ठा' इस सूत्र से भूतकालिक अर्थ में क्त प्रत्यय हुआ। शृ+क्त इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी ककार का अनुबन्धलोप हुआ। शृ+त इस स्थिति में

'ऋत इद् धातोः' इस सूत्र से धातु के ऋकार को रपर सहित इत्व होकर इर् हुआ। शिर्+त इस स्थिति में 'हलि च' इस सूत्र रेफान्त की उपधा को दीर्घ हुआ। शीर्+त इस स्थिति में 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' इस सूत्र से रेफ से परे निष्ठा संज्ञक तकार को नकार हुआ। शीर्+न इस स्थिति में 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' इस सूत्र से नकार को णकार हुआ। र्शीण इस स्थिति में स्वादि उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर शीर्णः यह रूप सिद्ध होता है।

भिन्नः – भिद् (भिदिर् विदारणे) धातु से परे 'निष्ठा' इस सूत्र से भूतकालिक अर्थ में क्त प्रत्यय हुआ। भिद्+क्त इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी ककार का अनुबन्धलोप हुआ। भिद्+त इस स्थिति में 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' इस सूत्र से रेफ से परे निष्ठा संज्ञक तकार को नकार हुआ तथा निष्ठा संज्ञक प्रत्यय से पूर्व धातु के दकार को भी नकार होता है। भिन्न इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन तथा स्वादि उत्पत्ति होकर भिन्नः यह रूप सिद्ध हुआ।

छिन्नः – छिद् (छिदिर् द्वैधीकरणे) धातु से परे 'निष्ठा' इस सूत्र से भूतकालिक अर्थ में क्त प्रत्यय हुआ। छिद्+क्त इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी ककार का अनुबन्धलोप हुआ। छिद्+त इस स्थिति में 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' इस सूत्र से रेफ से परे निष्ठा संज्ञक तकार को नकार हुआ तथा निष्ठा संज्ञक प्रत्यय से पूर्व धातु के दकार को भी नकार होता है। छिन्+न इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन तथा स्वादि उत्पत्ति होकर छिन्नः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः 8/2/43

वृत्ति – निष्ठातस्य नः स्यात्।

सूत्रार्थ – संयोगादि तथा आकारान्त साथ ही यण्वान् (य्, व्, र्, ल् वाले) धातु से परे निष्ठा संज्ञक प्रत्यय के तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

उदाहरण – द्राणः। ग्लानः।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में संयोगादेः, आतः, धातोः और यण्वतः ये सब पञ्चमी एकवचन के पद हैं।

वस्तुतः इस सूत्र के अर्थ को समझने के लिए इसकी तीन शर्तों को समझना आवश्यक है –

- धातु के आदि में संयोग (अचों के व्यवधान से रहित हल् वर्णों) का होना।
- धातु में यण् प्रत्याहार के वर्णों अर्थात् य्, व्, र, ल् में से किसी एक वर्ण का होना।
- धातु का आकारान्त होना।

इस प्रकार इन तीनों हेतुओं के होने पर धातु से परे निष्ठा संज्ञक प्रत्यय के तकार के स्थान पर नकार आदेश हो जाता है।

द्राणः – द्रा (कुत्साया गतौ) इस धातु से भूतकाल अर्थ में 'निष्ठा' सूत्र से क्त प्रत्यय हुआ। द्रा+क्त इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी ककार का अनुबन्धलोप हुआ। द्रा+त इस स्थिति में 'संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः' इस सूत्र से संयोगादि वाले आकारान्त धातु से परे निष्ठा संज्ञक प्रत्यय सम्बन्धी तकार को नकार हुआ। द्रा+न इस स्थिति में 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' सूत्र से नकार को णकार आदेश हुआ। द्रा+ण इस स्थिति में स्वादि उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर द्राणः यह रूप सिद्ध हुआ।

ग्लानः – ग्लै (हर्षक्षये) धातु से निष्ठा संज्ञक क्त प्रत्यय की विवक्षा में 'आदेच उपदेशेऽशिति' सूत्र से धातु के ऐकार को आकार आदेश हुआ। ग्ला इस धातु से भूतकाल अर्थ में 'निष्ठा' सूत्र से क्त प्रत्यय हुआ। ग्ला+क्त इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी ककार का अनुबन्धलोप हुआ। ग्ला+त इस स्थिति में 'संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः' इस सूत्र से संयोगादि वाले आकारान्त धातु से परे निष्ठा संज्ञक प्रत्यय सम्बन्धी तकार को नकार हुआ। ग्ला+न इस स्थिति में वर्ण+सम्मेलन तथा स्वादि कार्य होकर ग्लानः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – ल्वादिभ्यः 8/2/44

वृत्ति – एकविंशतेर्लूञादिभ्यः प्राग्वत्। ज्या धातुः। ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम्।

सूत्रार्थ – लूञ् आदि इक्कीस धातुओं से परे निष्ठा संज्ञक प्रत्यय के तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है। ज्या धातु को ग्रहिज्यावयिव्यधि. सूत्र से सम्प्रसारण होगा (वस्तुतः ज्या धातु की प्रक्रिया अग्रिम सूत्र में प्रदर्शित की जानी है जिसके सम्प्रसारण कार्य की सूचना मात्र इस सूत्र की वृत्ति में वृत्तिकार के द्वारा दी गई है)।

उदाहरण – लूनः।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में ल्वादिभ्यः यह पञ्चमी बहुवचन का पद है। जिस धातुसमूह के आदि में लूञ् छेदने यह धातु है उस धातुसमूह को ल्वादि कहा गया है। इस धातुसमूह में 21 धातुएं परिगणित हैं।

लूनः – लू (लूञ् छेदने) इस धातु से भूतकाल अर्थ में 'निष्ठा' सूत्र से क्त प्रत्यय हुआ। लू+क्त इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी ककार का अनुबन्धलोप हुआ। लू+त इस स्थिति में 'ल्वादिभ्यः' इस सूत्र से ल्वादि धातुओं से परे निष्ठा संज्ञक प्रत्यय सम्बन्धी तकार को नकार हुआ। लू+न इस स्थिति में इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन तथा स्वादि कार्य होकर लूनः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – हलः 6/4/2

वृत्ति – अङ्गावयवाद्धलः परं यत्सम्प्रसारणं तदन्तस्य दीर्घः।

सूत्रार्थ – अङ्ग के अवयव व्यञ्जन (हल्) से परे जो सम्प्रसारण, तदन्त अङ्ग के स्थान पर दीर्घ होता है।

उदाहरण – जीनः।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में हलः यह पञ्चमी एकवचन का पद है।

जीनः – ज्या (वयोहानौ) धातु से भूतकाल अर्थ में 'निष्ठा' सूत्र से क्त प्रत्यय हुआ। ज्या+क्त इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी ककार का अनुबन्धलोप हुआ। ज्या+त इस स्थिति में धातु के यकार को सम्प्रसारण होकर इकार हुआ। ज्+इ+आ+त इस स्थिति में सम्प्रसारण से परे आकर को पूर्वरूप हुआ। ज्+इ+त इस स्थिति में प्रकृत 'हलः' सूत्र से दीर्घ हुआ। जी+त इस स्थिति में 'ल्वादिभ्यः' सूत्र से क्त प्रत्यय सम्बन्धी तकार को नकार हुआ। जी+न इस स्थिति में स्वादि कार्य होकर जीनः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – ओदितश्च 8/2/45

सूत्रार्थ – ओदित् धातुओं से परे निष्ठा संज्ञक प्रत्यय के तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

उदाहरण – भुजो भुग्नः। टुओश्वि उच्छूनः।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में ओदितः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। च यह अव्यय पद है। जिस धातु में ओकार की इत् संज्ञा हुई हो उसे ओदित् धातु कहा जाता है।

भुग्नः – भुज् (कौटिल्ये) धातु से भूतकाल अर्थ में 'निष्ठा' सूत्र से क्त प्रत्यय हुआ। भुज्+क्त इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी ककार का अनुबन्धलोप हुआ। भुज्+त इस स्थिति में प्रकृत 'ओदितश्च' सूत्र से नकार होकर भुज्+न बना। इस स्थिति में चोः कुः (8/2/30) की दृष्टि में परत्रिपादी का सूत्र होने के कारण ओदितश्च (8/2/45) पूर्वत्रासिद्धम् (8/2/1) की व्यवस्था से परशास्त्र होने से असिद्ध हो जाता है। अतः चोः कुः की दृष्टि में 'ओदितश्च' सूत्र से के तकार के स्थान पर किया गया नकार आदेश असिद्ध रहता है। अतः नकार को तकार (झल्) परे मानकर 'चोः कुः' जकार के स्थान पर कुत्व करके गकारादेश कर देता है। पुनः भुग्न इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन एवं स्वादि कार्य होकर भुग्नः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – शुषः कः 8/2/51

वृत्ति – निष्ठातस्य कः।

सूत्रार्थ – शुष् धातु से परे निष्ठा संज्ञक प्रत्यय के तकार के स्थान पर ककार आदेश होता है।

उदाहरण – शुष्कः।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में शुषः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। कः यह प्रथमा एकवचन का पद है। निष्ठा संज्ञा क्त और क्तवतु प्रत्ययों की होती है।

शुष्कः – शुष् (शोषणे) धातु से भूतकाल अर्थ में 'निष्ठा' सूत्र से क्त प्रत्यय हुआ। शुस्+क्त इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी ककार का अनुबन्धलोप हुआ। शुष्त इस स्थिति में क्त सम्बन्धी त प्रत्यय के स्थान पर प्रकृत सूत्र 'निष्ठातस्य कः' से क हुआ। शुष्+क इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन तथा स्वादि कार्य होकर शुष्कः यह रूप सिद्ध होता है।

सूत्र – पचो वः 8/2/52

सूत्रार्थ – पच् धातु से परे निष्ठा संज्ञक प्रत्यय के तकार के स्थान पर वकार आदेश होता है।

उदाहरण – पक्वः।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में पचः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। वः यह प्रथमा एकवचन का पद है।

पक्वः – इस रूप में पच् धातु से क्त प्रत्यय होने के बाद प्रत्यय सम्बन्धी तकार के स्थान पर प्रकृत 'पचो वः' सूत्र से वकार हुआ। पच्+व इस स्थिति में चकार को कुत्व एवं स्वादि कार्य होने से पक्वः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – क्षायो मः 8/2/53

सूत्रार्थ – क्षै धातु से परे निष्ठा संज्ञक प्रत्यय के तकार के स्थान पर मकार आदेश होता है।

उदाहरण – क्षामः।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में क्षायः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। मः यह प्रथमा एकवचन का पद है।

क्षै क्षेये क्षामः – ऐकारान्त क्षै धातु को आकारादेश होने से क्षा हुआ। क्षा इस धातु से भूतकाल अर्थ में 'निष्ठा' सूत्र से क्त प्रत्यय हुआ। क्षा+क्त इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी ककार का अनुबन्धलोप हुआ। क्षा+त इस स्थिति में प्रकृत 'क्षायो मः' सूत्र से क्त सम्बन्धी तकार को मकार हुआ। क्षा+म इस सथिति में स्वादि कार्य होकर क्षामः यह रूप सिद्ध हुआ है।

सूत्र – निष्ठायां सेटि 6/4/52

वृत्ति – णेर्लोपः।

सूत्रार्थ – इट् से युक्त निष्ठा संज्ञक प्रत्यय परे रहते णि का लोप होता है।

उदाहरण – भावितः। भावितवान्।

व्याख्या – यह लोप विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में निष्ठायां और सेटि दोनों सप्तमी एकवचन के पद हैं।

भावितः – णिजन्त भावि धातु से परे भूतकाल अर्थ में 'निष्ठा' सूत्र से क्त प्रत्यय हुआ। भावि+क्त इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी ककार का अनुबन्धलोप हुआ। भावि+त इस स्थिति में क्त प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होने के कारण 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' सूत्र से इट् का आगम हुआ। भावि+इट्+त इस स्थिति में 'निष्ठायां सेटि' सूत्र से इट् युक्त निष्ठा संज्ञक प्रत्यय के परे रहते धातु सम्बन्धी णि (इ) का लोप हुआ। भाव्+इ+त इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन तथा स्वादि कार्य होकर भावितः यह रूप सिद्ध हुआ।

भावितवान् – णिजन्त भावि धातु से परे भूतकाल अर्थ में 'निष्ठा' सूत्र से क्तवतु प्रत्यय हुआ। भावि+क्तवतु इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। भावि+तवत् इस स्थिति में क्त प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होने के कारण 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' सूत्र से इट् का आगम हुआ। भावि+इट्+तवत् इस स्थिति में 'निष्ठायां सेटि' सूत्र से इट् युक्त निष्ठा संज्ञक प्रत्यय के परे रहते धातु सम्बन्धी णि (इ) का लोप हुआ। भाव्+इ+तवत् इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन भावितवत् बना। तत्पश्चात् स्वादि कार्य होकर भावितवान् यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – दृढः स्थूलबलयोः 7/2/20

वृत्ति – स्थूले बलवति च निपात्यते।

सूत्रार्थ – स्थूल और बलवान् अर्थ में दृढ शब्द का निपातन होता है।

व्याख्या – दृढः यह प्रथमा एकवचन का पद है। स्थूलबलयोः यह सप्तमी द्विवचन का पद है। यह विधि सूत्र है।

जब कोई साधु शब्द सूत्रों की प्रक्रिया से सिद्ध नहीं हो रहा हो अर्थात् उस साधु शब्द की सिद्धि के लिए अनेक नए सूत्रों के निर्माण की आवश्यकता प्रतीत हो रही हो तो इस स्थिति में ऐसे शब्दों की सिद्धि के लिए सामान्य सूत्रों द्वारा विहित प्रक्रिया का अनुसरण न करके सूत्रकार द्वारा सूत्र में शुद्ध शब्द का साक्षात् पाठ कर देना ही निपातन कहलाता है। यहाँ पर दृह् धातु से क्त प्रत्यय करने के बाद इट् होकर दृहितः ऐसा शब्द बनने जा रहा है। शिष्ट परम्परा में यह शब्द स्थूल और बलवान् अर्थ को व्यक्त नहीं करता है। अतः स्थूल और बलवान् अर्थ में दृहितः यह शब्द बनाना अभीष्ट नहीं है। ऐसा बनने से रोकने के लिए कदाचित् एकाधिक सूत्र के निर्माण की आवश्यकता हो सकती थी। अतः एक ही सूत्र बना कर इस समस्त प्रक्रिया से बचने के लिए लाघव किया गया। एतदर्थ इस सूत्र के द्वारा मोटा और बलवान् अर्थ में दृह् धातु और क्त प्रत्ययान्त शब्द दृढ का सीधे निपातन कर दिया गया। तात्पर्य यह हुआ कि अन्य अर्थों में इस धातु से क्त प्रत्यय करके दृहित बन सकता है किन्तु उक्त अर्थ में तो दृढः ही बनेगा। दृढः = मोटा और बलवान्।

सूत्र – दधातेर्हिः 7/4/42

वृत्ति – तादौ किति।

सूत्रार्थ – तकार हो आदि में जिसके ऐसे कित् (क इत्संज्ञक) प्रत्यय परे रहते धा (डुधाञ् धारणपोषणयोः) धातु के स्थान पर हि आदेश होता है।

उदाहरण – हितम्।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में दधातेः यह षष्ठी एकवचन का पद है। हिः यह प्रथमा एकवचन का पद है।

हितम् – यहां 'धा' धातु से क्त प्रत्यय हुआ। पुनः प्रत्यय सम्बन्धी ककार का अनुबन्धलोप होने से शेष तकार कित् हुआ। अतः तकारादि कित् प्रत्यय के परे रहते प्रकृत 'दधातेर्हिः' सूत्र से धा के स्थान पर हि आदेश हुआ। हित इस स्थिति में स्वादि सम्बन्धी कार्य होकर हितम् यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – दो दद्घोः 7/4/46

वृत्ति – घुसंज्ञकस्य दा इत्यस्य दथ् स्यात् तादौ किति। चर्त्वम्।

सूत्रार्थ – तकार हो आदि में जिसके ऐसे कित् (क इत्संज्ञक) प्रत्यय परे रहते घु संज्ञक दा धातु के स्थान पर दद् आदेश होता है। दा धातु की दाधाघ्वदाप् सूत्र से घु संज्ञा होती है।

उदाहरण – दत्तः।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में दः और घोः ये षष्ठी एकवचन के पद हैं। दद् यह प्रथमा एकवचन का पद है। दा धातु की दाधाघ्वदाप् सूत्र से घु संज्ञा होती है।

दत्तः – इस रूप में घु संज्ञक दा धातु से क्त प्रत्यय हुआ तथा प्रत्यय सम्बन्धी ककार का अनुबन्धलोप होने से शेष तकार कित् हुआ। अतः तकारादि कित् प्रत्यय के परे रहते प्रकृत 'दो दद् घोः' सूत्र से दा के स्थान पर दद् आदेश हुआ। दद्त इस स्थिति में द को चर्त्व तकार तथा स्वादि कार्य होकर दत्तः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – लिटः कानज्वा 3/2/106

सूत्रार्थ – लिट् लकार के स्थान पर विकल्प से कानच् प्रत्यय आदेश होता है ।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में लिटः यह षष्ठी एकवचन का पद है। कानच् यह प्रथमा एकवचन का पद है। वा यह अव्यय पद है।

सूत्र – क्वसुश्च 3/2/107

वृत्ति – लिटः कानच् क्वसुश्च वा स्तः।

सूत्रार्थ – लिट् लकार के स्थान पर विकल्प से क्वसु प्रत्यय भी आदेश होता है ।

उदाहरण – चक्राणः।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में क्वसुः यह प्रथमा एकवचन का पद है। च यह अव्यय पद है। ध्यातव्य है अष्टाध्यायी क्रम के अनुसार लिटः कानज्वा 3/2/106 और क्वसुश्च 3/2/107 इन दोनों सूत्रों से पहले छन्दसि लिट् 3/2/105 सूत्र विद्यमान है। इस सूत्र के द्वारा वेद में सामान्य भूतकाल मे लिट् लकार विहित होता है। उसी के स्थान पर इन दो सूत्रों के द्वारा कानच् और क्वसु प्रत्यय हो जाते है। अतः कानच् और क्वसु प्रत्ययान्त शब्द भी सामान्यतः वेद में ही प्रयुक्त होते हैं।

(कानच्) चक्राणः – कृ धातु से परे लिट् के स्थान पर कानच् आदेश हुआ। कानच् में चकार का अनुबन्धलोप करने पर कृ+आन बना। स्थानिवद्भाव स्वीकार कर आन को लिट् मान कर लिटि 'धातोरनभ्यासस्य' से कृ को द्वित्व, कृ के ऋकार को उरत्, रपर, हलादिशेष, चुत्व करके चकृ+आन बना। आन लिट् का अपित् है, अतः 'असंयोगाल्लिट् कित्' से किद्वद्भाव हो गया है। अतः 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' से निषेध हो जाता है। फलतः चकृ+आन में 'इको यणचि' से यण् होकर चक्राण बनता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, स्वादि कार्य करके चक्राणः सिद्ध हो जाता है।

सूत्र – **म्वोश्च 8/2/65**

वृत्ति – मान्तस्य धातोर्नत्वं म्वोः परतः।

सूत्रार्थ – मकारान्त धातु के अन्त्य मकार के स्थान पर नकार आदेश होता है, मकार और वकार परे हो तो।

उदाहरण – जगन्वान्।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में म्वोः यह सप्तमी द्विवचन का पद है। च यह अव्यय पद है। जैसा कि कहा जा चुका है कि कानच् और क्वसु प्रत्ययों का प्रयोग वेद में ही होता है। अतः इन प्रत्ययों का प्रयोग लोक में प्रायः नहीं होता। तथापि इन दोनों में से एक प्रत्यय क्वसु का लौकिक प्रयोग कवियों द्वारा भी यत्र–कुत्रचित् किया गया है परन्तु ऐसे अपाणिनीय प्रयोग स्वल्प ही प्राप्त होते हैं। सामान्यतः लौकिक संस्कृत भाषा में परोक्षभूत के अर्थ में लिट् लकार का प्रयोग होता है। परन्तु वेद में सामान्य भूतार्थक लिट् के स्थान पर इसी अर्थ में विद्यमान होने के कारण कानच् और क्वसु भी प्रयुक्त होते हैं।

जगन्वान् – गम् धातु से परे लिट् के स्थान पर 'क्वसुश्च' से क्वसु आदेश, अनुबन्धलोप करके गम्+वस् बना। स्थानिद्वद्भाव से वस् को लिङ्वत् मानकर गम् को द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, हलादिशेष, चुत्व करके जगम्+वस् बना। प्राप्त इट् का 'नेड् वशि कृति' से निषेध। पुनः

'विभाषा गमहनविदविशाम्' से विकल्प से इट् का आगम करके 'गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि' से उपधालोप करने पर जग्मिवस् बनता है। स्वादि की उत्पत्ति 'उगिदचां सर्वनामस्थाने धातोः' से नुम् का आगम, सान्तमहतः संयोगस्य से दीर्घ करके, हल्ङ्यादिलोप, संयोगान्त सकार का लोप करने पर जग्मिवान् सिद्ध होगा। 'विभाषा गमहनविदविशाम्' से इडागम विकल्प से होता है अतः इट् विकल्प पक्ष में 'म्वोश्च' से धातु के मकार के स्थान पर नकार आदेश करके जगन्वान् बनेगा।

25.3 सारांश

कृदन्त के अन्तर्गत आने वाले पूर्वकृदन्त प्रकरण से सम्बद्ध इस इकाई में हमने खश्, क्वनिप्, ड, क्त, क्तवतु, कानच् और क्वसु इन सात प्रत्ययों का अध्ययन किया। ये सात प्रत्यय कृदतिङ् इस अधिकार में पढ़े जाने के कारण कृत् संज्ञक कहलाते हैं। जैसा कि हम पूर्व की इकाइयों में पढ़ चुके हैं कि इन प्रत्ययों का कर्तरि कृत् सूत्र द्वारा कर्ता अर्थ में विधान होता है। परन्तु इस इकाई में अर्थ विशेष के कतिपय ऐसे उदाहरण भी दृष्टिगोचर हुए हैं जहाँ इसी कर्ता अर्थ के अन्तर्गत भूत आदि अर्थ के द्योत्य अथवा वाच्य होने पर ही प्रत्यय का विधान हो रहा है। इसके अतिरिक्त इस इकाई के सूत्रों में हमने अनेक ऐसे भी स्थलों को जाना है जहाँ सामान्यतः धातु मात्र से विहित कृत् प्रत्ययों का किसी उपसर्ग, कर्म आदि कारक अथवा राजन् सह आदि सुबन्तों के उपपद में रहने पर विधान होता है।

इस इकाई के अध्ययन की एक अन्य विशेषता यह भी प्राप्त हुई है कि इसमें हमने भूतार्थक और निष्ठा संज्ञक क्त एवं क्तवतु प्रत्ययों तथा इन प्रत्ययों के तकार के स्थान पर विहित होने वाले भिन्न–भिन्न वर्णों के आदेश से सम्बन्धित प्रक्रिया का विशेष ज्ञान प्राप्त किया है।

प्रथम और द्वितीय इकाई में आपके द्वारा विस्तार पूर्वक पठित वाऽसरूप विधि का उपयोग इस इकाई में भी समान रूप से प्रासंगिक है यह भी तृतीय इकाई के अपने इस अध्ययन के द्वारा हम भलीभाँति जान चुके हैं।

25.4 शब्दावली

ल्वादि गण – इस गण के अन्तर्गत कुल 21 धातुएँ परिगणित् हैं – लूञ् छेदने, स्तृञ् आच्छादने, कृञ् हिंसायाम्, वृञ् वरणे, धूञ् कम्पने, शृ हिंसायाम्, दृ विदारणे, जृ वयोहानौ, झृ इत्येके, धृ इत्यन्ये, नृ नये, कृ हिंसायाम्, री गतौ, गृ शब्दे, ज्या वयोहानौ, री गतिरेषणयोः, ली श्लेषणे, व्ली वरणे, प्ली गतौ, व्री वरणे, भ्री भये।

निष्ठा – क्त और क्तवतु प्रत्ययों की निष्ठा संज्ञा होती है। अतः ये प्रत्यय निष्ठा कहलाते हैं।

सेट् – धातु सामान्यतः दो प्रकार हैं – सेट् धातु एवं अनिट् धातु। सेट् अर्थात् इट् सहित धातु एवं अनिट् अर्थात् इट् रहित धातु। धातु से जब वलादि आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते हैं

तो आर्धधातुकस्येड् वलादेः सूत्र से इट् का आगम होता है। जिन धातुओं से इट् का आगम होता है वे सेट् धातु कहलाती हैं।

चर्त्त्व – वर्ण परिवर्तन में जब किन्हीं वर्णों को वर्ग के प्रथम वर्ण क, च, ट, त, प और श, ष, स होने को चर्त्व कहा जाता है।

संयोगादि धातुएँ – दो अथवा दो से अधिक हल् वर्णों के मध्य में जब कोई अच् वर्ण नहीं रहता तो उनकी संयोग संज्ञा होती है। अतः दो या दो से अधिक हल् वर्णों का संयोग जिन धातुओं के आदि में रहता है वे संयोगादि धातुएँ कहलाती हैं।

ओदित् धातुएँ – ओ वर्ण की इत् संज्ञा जिन धातुओं में हुई हों वे ओदित् धातु कहलाती हैं।

सम्प्रसारण – यण् (य्, व्, र् ल्) के स्थान पर जब इक् (इ, उ, ऋ, लृ) आदेश होता हैं तो उसकी सम्प्रसारण संज्ञा होती है।

घु संज्ञा – दा और धा रूप धातुओं की घु संज्ञा होती है।

निपातन – जब कोई साधु शब्द सूत्रों की प्रक्रिया से सिद्ध नहीं हो रहा हो अर्थात् उस साधु शब्द की सिद्धि के लिए अनेक नए सूत्रों के निर्माण की आवश्यकता प्रतीत हो रही हो तो इस स्थिति में ऐसे शब्दों की सिद्धि के लिए सामान्य सूत्रों द्वारा विहित प्रक्रिया का अनुसरण न करके सूत्रकार द्वारा सूत्र में शुद्ध शब्द का साक्षात् पाठ कर देना ही निपातन कहलाता है। जैसे – दृढः स्थूलबलयोः 7/2/20 इस सूत्र का प्रसङ्ग देखा जा सकता है। यहाँ पर दृह् धातु से क्त प्रत्यय करने के बाद इट् होकर दृहितः ऐसा शब्द बनने जा रहा है। शिष्ट परम्परा में यह शब्द स्थूल और बलवान् अर्थ को व्यक्त नहीं करता है। अतः स्थूल और बलवान् अर्थ में दृहितः यह शब्द बनाना अभीष्ट नहीं है। ऐसा बनने से रोकने के लिए कदाचित् एकाधिक सूत्र के निर्माण की आवश्यकता हो सकती थी। अतः एक ही सूत्र बना कर इस समस्त प्रक्रिया से बचने के लिए लाघव किया गया। एतदर्थ इस सूत्र के द्वारा मोटा और बलवान् अर्थ में दृह् धातु और क्त प्रत्ययान्त शब्द दृढ का सीधे निपातन कर दिया गया। तात्पर्य यह हुआ कि अन्य अर्थों में इस धातु से क्त प्रत्यय करके दृहित बन सकता है किन्तु उक्त अर्थ में तो दृढः ही बनेगा। दृढः = मोटा और बलवान्।

25.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी, गोरखपुरः गीताप्रेस।
2. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या गोविन्दाचार्य, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्लीः चौखम्भा सुरभारती।
3. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, धरानन्द. लघुसिद्धान्तकौमुद,. दिल्लीः मोतीलाल बनारसी दास।

4. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, भीमसेन, लघुसिद्धान्तकौमुदी. (भाग–1–6), दिल्लीः भैमी प्रकाशन।
5. शास्त्री, चारुदेव. व्याकरण चन्द्रोदय. (भाग–1–3), दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास।
6. वरदराजाचार्य, सम्पा० एवं हिन्दी सिंह, सत्यपाल. लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्लीः शिवालिक पब्लिकेशन।
7. Apte, V.S. The Students, Guide to Sanskrit Composition, Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.
8. Kale, M.R. Higher Sanskrit Grammar, MLBD, Delhi.
9. Kanshi Ram, Laghusiddhantkaumudi, (Vol. 1&3), MLBD, Delhi, 2009.
10. Ballantyne, James R. Laghusiddhantkaumudi, Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

25.6 अभ्यास प्रश्न

1. खश् प्रत्यय किस सूत्र से होता है?
2. खश् प्रत्यय में शकार की इत् संज्ञा का प्रयोजन क्या है?
3. ड और क्वनिप् प्रत्यय में अनुबन्धलोप होकर क्या शेष रहता है?
4. निष्ठा संज्ञा किनकी होती है?
5. क्त प्रत्यय किस अर्थ में होता है?
6. क्तवतु प्रत्यय किस अर्थ में होता है?
7. क्तक्तुवतू निष्ठा सूत्र को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
8. क्त सम्बन्धी तकार को नकार करने वाले सूत्रों को सोदाहरण लिखिए।
9. क्त सम्बन्धी तकार का किन–किन रूपों में परिवर्तन होता है?
10. निम्नलिखित रूपों की सिद्धि कीजिए –

    कालिम्मन्या, पारदृश्वा, सरसिजम्, सरोजम्, कृतवान्, स्नातं, पक्वः और शीर्णः।

इकाई 26 पूर्वकृदन्त प्रकरण (तृतीय भाग) (लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे से पुवः संज्ञायाम् सूत्र तक)

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे सूत्र से लेकर पूर्वकृदन्त प्रकरण की समाप्ति तक के अध्ययन के माध्यम से सूत्र, सूत्रार्थ एवं उदाहरणों से परिचित हो सकेंगे;
- शतृ, शानच्, वसु, तृन्, षाकन्, उ, क्विप्, ष्ट्रन् जैसे कृत् प्रत्ययों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे;
- सत् संज्ञा किन प्रत्ययों की होती है और वे प्रत्यय किस अर्थ में विहित होते हैं? यह भी जान सकेंगे;
- प्रत्यय के आदि में स्थित षकार की इत् संज्ञा कैसे होती है, यह भी जान सकेंगे;
- इस इकाई के अध्ययन से शतृ और शानच् प्रत्ययों के रूपों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;
- इन प्रत्ययों से सम्बन्धित प्रक्रिया का ज्ञान भी इस पाठ के माध्यम से हो सकेगा; तथा
- इन प्रत्ययों से बने कृदन्त पदों का भाषा में प्रयोग करने में समर्थ हो सकेंगे।

26.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने पूर्वकृदन्त प्रकरण के द्वितीय भाग के अन्तर्गत आने वाले खश्, क्वनिप्, ड, क्त, क्तवतु, कानच् और क्वसु इन सात प्रत्ययों का भली–भाँति परिचय प्राप्त किया था। अब हम इस इकाई में हम पूर्वकृदन्त प्रकरण के तृतीय भाग की चर्चा करेंगे। यहाँ विशेष रूप

से ध्यान रखने की बात यह है कि इस इकाई में आने वाले प्रत्ययों की केवल कृत् संज्ञा होगी कृत्य संज्ञा नहीं।

इस प्रकार वर्तमान तृतीय इकाई में हम इस प्रकरण के अन्तर्गत आने वाले लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे 3/2/124 सूत्र से लेकर पूर्वकृदन्त प्रकरण की समाप्ति पर्यन्त चर्चा करेंगे। इस प्रकार इन दोनों सूत्रों के मध्य आने वाले समस्त सूत्रों तथा उनसे विभिन्न अर्थों में होने वाले प्रत्ययों की समालोचना विस्तार पूर्वक प्रकृत इकाई के माध्यम से की जा रही है।

जैसा कि हम जान चुके हैं कि कृत् प्रत्यय सामान्यतः धातु मात्र से विहित होते हैं परन्तु बहुधा किसी शब्द विशेष अथवा उपसर्गों के उपपद में होने पर ही इन प्रत्ययों का धातु से विधान होना सम्भव हो पाता है। ऐसे विशिष्ट स्थलों का परिचय भी इस इकाई के अध्ययन के द्वारा हमें प्राप्त हो सकेगा। इसके साथ ही इस इकाई को पढ़ने के बाद निष्ठा संज्ञा, निष्ठा संज्ञक प्रत्ययों एवं तत्सम्बद्ध अथवा तदाश्रित कार्यों से भी हमारा परिचय सम्भव हो पायेगा। एवं प्रकारेण इस इकाई के अन्तर्गत खश्, क्वनिप्, ड, क्त, क्तवतु, कानच् और क्वसु प्रत्ययों की चर्चा की जायेगी। इसके साथ ही इन कृत् प्रत्ययों के संयोजन से निष्पन्न होने वाले शब्दों की प्रक्रिया भी प्रकृत पाठ में प्रदर्शित की जायेगी।

26.2 पूर्वकृदन्त प्रकरण (तृतीय भाग) के सूत्र, वृति, सूत्रार्थ, उदाहरण, व्याख्या और रूपसिद्धि (लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे सूत्र से पुवः संज्ञायाम् सूत्र पर्यन्त)

सूत्र – लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे 3/2/124

वृत्ति – अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लट एतौ वा स्तः। शबादिः।

सूत्रार्थ – अप्रथमान्त पदों के साथ यदि लट् का समानाधिकरण हो तो लट् के स्थान पर शतृ और शानच् प्रत्यय आदेश होते हैं।

उदाहरण – पचन्तं चैत्रं पश्य।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। लटः यह षष्ठी एकवचन का पद है। शतृशानचौ यह प्रथमा द्विवचन का पद है। अप्रथमासमानाधिकरणे यह सप्तमी एकवचन का पद है।

समानाधिकरण से तात्पर्य यह है कि लट् लकार और कारक की एक ही विभक्ति हो। परस्मैपदी धातुओं से शतृ, आत्मनेपदी धातुओं से शानच् तथा उभयपदी से दोनों प्रत्यय होते है। शानच् की तङानावात्मनेपदम् से आत्मनेपदसंज्ञा होती है। शतृ और शानच् प्रत्यय में अनुबन्ध लोप के बाद अत् और आन शेष रहता है। शित् (शकार की इत् संज्ञा) होने के कारण ये दोनों प्रत्यय सार्वधातुक संज्ञक हैं। अतः यहाँ सार्वधातुक सम्बन्धी धातु के गण की व्यवस्था के

अनुसार शबादि विकरण कार्य भी होते हैं। जैसे – भ्वादिगण की भू आदि धातुओं से शप् विकरण आकर भू+शप+शतृ (अत्) = भवत्। इसी प्रकार दिवादिगण की धातु के साथ श्यन्, स्वादि से श्नु आदि विकरण आयेंगे। शतृ में ऋकार की इत्संज्ञा का फल उगिदचां सर्वनामस्थाने धातोः से नुम् आगम आदि करना है। शानच् में शकार और चकार इत्संज्ञक है अतः आन शेष रहता है।

इस प्रकार इस सूत्र का अर्थ यह प्राप्त होता है कि – अप्रथमान्त (प्रथमान्त से भिन्न) अर्थात् द्वितीयान्त आदि पदों के साथ यदि लट् लकार का समानाधिकरण हो (यानी दोनों का अधिकरण अर्थात् वाच्य समान अर्थात् अभिन्न रहे) तो लट् के स्थान पर शतृ और शानच् प्रत्यय आदेश होते हैं।

(शतृ) – पचन्तं चैत्रं पश्य – पच् (डुपचष् पाके) धातु से कर्तृवाच्य में लट् लकार हुआ। पच्+लट् यहाँ पर लट् का वाच्य वही है जो 'चैत्रम्' इस द्वितीयान्त पद का है अतः अप्रथमान्त के साथ समान अर्थात् अभिन्न अधिकरण वाला होने के कारण लट् के स्थान पर 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' इस सूत्र से शतृ और शानच् आदेश होते हैं। यहाँ पर शतृ हुआ। पच्+शतृ इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। पच्+अत् इस स्थिति में प्रत्यय का शेष जो अत् वह शित् होने के कारण 'कर्तरि शप्' सूत्र से शप् विकरण तथा अनुबन्धों का लोप हुआ। पच्+अ+अत् इस अवस्था में वर्ण–सम्मेलन हुआ। पचत् इस स्थिति में स्वादि–उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर पचन्तम् यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – आने मुक् 7/2/82

वृत्ति – अदन्ताङ्गस्य मुमागमः स्यादाने परे। लडित्यनुवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणात् प्रथमासामानाधिकरण्येऽपि क्वचित्। सन् द्विजः।

सूत्रार्थ – आन (शानच् का शेष आन) प्रत्यय परे रहते अदन्त अङ्ग को मुम् का आगम होता है। लट् का अनुवर्तन सम्भव होने पर भी पुनः लट् के ग्रहण से यह ज्ञापित होता है कि कहीं–कहीं प्रथमासमानाधिकरण होने पर भी सन् द्विजः जैसे प्रयोगों में उपर्युक्त प्रत्यय हो जाते हैं।

उदाहरण – पचमानं चैत्रं पश्य।

व्याख्या – यह आगम विधायक विधि सूत्र है। आने यह सप्तमी एकवचन का पद है। मुक् यह प्रथमा एकवचन का पद है। मुक् में आदि मकार शेष रहता है उकार और ककार का अनुबन्धलोप हो जाता है। कित् होने के कारण आद्यन्तौ टकितौ के नियमन से अदन्त के अन्त में होगा।

लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे इस सूत्र में विद्यमान लटः इस पद की आवश्यकता के विषय में चर्चा करते हुए वृत्तिकार कहते हैं– कि वर्तमाने लट् इस पूर्व सूत्र से लट् की अनुवृत्ति लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे इस सूत्र में आ सकती थी। फिर भी इस सूत्र

में लटः पद का पुनः पढना यह सूचित करता है कि कहीं–कहीं प्रथमासमानाधिकरण होने पर भी सन् द्विजः जैसे प्रयोगों में उपर्युक्त प्रत्यय हो जाते हैं। सन् द्विजः इस प्रयोग के सन् इस पद में शतृ प्रत्यय हुआ है। अस् धातु से शतृ करने पर श्नसोरल्लोपः से अस् के अकार का लोप करके प्रथमा के एक वचन में सन् बनता है।

(शानच्) – पचमानं चैत्रं पश्य – पच् (डुपचष् पाके) धातु से कर्तृवाच्य में लट् लकार हुआ। पच्+लट् यहाँ पर लट् का वाच्य वही है जो 'चौत्रम्' इस द्वितीयान्त पद का है अतः अप्रथमान्त के साथ समान अर्थात् अभिन्न अधिकरण वाला होने के कारण लट् के स्थान पर 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' इस सूत्र से शतृ और शानच् आदेश होते हैं। यहाँ पर शानच् हुआ। पच्+शानच् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। पच्+आन इस स्थिति में शबादि कार्य हुआ। पच+आन इस स्थिति में आन के परे रहते अदन्त अङ्ग को मुक् का आगम हुआ। पच+मुक्+आन इस स्थिति में मुक् के उकार तथा ककार का अनुबन्धलोप हुआ। पच्+म्+आन इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन हुआ। पचमान इस अवस्था में स्वादि–उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर पचमानम् यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – विदेः शतुर्वसुः 7/1/36

वृत्ति – वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा।

सूत्रार्थ –विद् (जानना) धातु से परे शतृ के स्थान पर विकल्प से वसु आदेश होता है।

उदाहरण – विदन्। विद्वान्।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में विदेः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। शतुः यह षष्ठी एकवचन का पद है। वसुः यह प्रथमा एकवचन का पद है। वसु में उकार की इत्संज्ञा होती है, वस् शेष रहता है।

–

(वसु पक्ष में) विद्वान् – विद् धातु से परे लट् के स्थान पर 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' सूत्र से शतृ प्रत्यय हुआ। विद्+शतृ इस स्थिति में अनुबन्धलोप हुआ। विद्+अत् इस स्थिति में शप् विकरण तथा अदादि गण पठित धातु होने के कारण शप् का लोप हुआ। विद्+अत् इस स्थिति में 'विदेः शतुर्वसुः' इस सूत्र से विद् धातु से परे शतृ सम्बन्धी अत् के स्थान पर विकल्प से वसु आदेश हुआ। विद्‌वसु इस स्थिति में वसु सम्बन्धी अन्त्य उकार का अनुबन्धलोप हुआ। विद्वस् इस स्थिति में स्वादि की उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर विद्वान् यह रूप सिद्ध हुआ।

(शतृ पक्ष में) विदन् – वसु आदेश वैकल्पिक है अतः जिस पक्ष में शतृ को वसु आदेश नहीं होगा उस पक्ष में शतृ प्रत्यय होकर विद्+शतृ हुआ। पुनः अनुबन्धादि कार्य तथा शतृ की सार्वधातुक संज्ञा, शप्, अदादिगणीय धातु होने का कारण उसका लुक् करके विद्+अत् =

विदत् बना। पुनः प्रातिपदिक सञ्ज्ञा, स्वादि–उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर विदन् यह रूप बना।

सूत्र – तौ सत् 3/2/127

वृत्ति – तौ शतृशानचौ सत्संज्ञौ स्तः।

सूत्रार्थ – शतृ और शानच् की सत् संज्ञा होती है।

व्याख्या – यह संज्ञा सूत्र है। इस सूत्र में तौ यह प्रथमा द्विवचन का पद है। सत् यह प्रथमा एकवचन का पद है। जिस तरह निष्ठा कहने से क्त और क्तवतु प्रत्यय का ज्ञान हो जाता है, उसी प्रकार सत् कहने से शतृ और शानच् का बोध होगा। अर्थात् शतृ और शानच् को सत् कहा जाता है। सत्–संज्ञा का उपयोग लृटः सद्वा आदि सूत्रों में किया जायेगा।

सूत्र – लृटः सद्वा 3/3/14

वृत्ति – व्यवस्थितविभाषेयम्। तेनाप्रथमासमानाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोः सम्बोधने लक्षणहेत्वोश्च नित्यम्।

सूत्रार्थ – लृट् के स्थान पर सत् संज्ञक (शतृ और शानच्) विकल्प से आदेश होते हैं।

उदाहरण – करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में लृटः यह षष्ठी एकवचन का पद है। सत् यह प्रथमा एकवचन का पद है। वा यह अव्यय पद है। यह व्यवस्थित विभाषा है। इस कारण अप्रथमासामानाधिकरण्य में तथा प्रत्यय व उत्तरपद के परे रहते सम्बोधन, लक्षण और हेतु में नित्य ही सत् संज्ञक प्रत्यय हो जाते हैं।

करिष्यन्तम् – कृ धातु से कर्तृ विवक्षा में भविष्यत्सामान्य अर्थ में लृट् लकार हुआ तथा लृट् सम्बन्धी अन्य कार्य होकर करिष्य+लृट् बना। इस अवस्था में 'लृटः सद् वा' सूत्र से शतृ प्रत्यय हुआ। करिष्य+शतृ इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। करिष्य+अत् इस स्थिति में करिष्य+अत् इस अवस्था में 'अतो गुणे' सूत्र से पूर्व रूप होकर करिष्य+त् बना। करिष्यत् इस स्थिति में स्वादि–उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर करिष्यन्तम् यह रूप सिद्ध हुआ।

करिष्यमाणम् – कृ धातु से कर्तृ विवक्षा में भविष्यत्सामान्य अर्थ में लृट् लकार हुआ तथा लृट् सम्बन्धी अन्य कार्य होकर करिष्य+लृट् बना। इस अवस्था में 'लृटः सद् वा' सूत्र से शानच् प्रत्यय हुआ। करिष्य+शानच् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। करिष्य+आन इस स्थिति में आन के परे रहते अदन्त अङ्ग को मुक् का आगम हुआ। करिष्य+मुक्+आन इस स्थिति में मुक् के उकार तथा ककार का अनुबन्धलोप हुआ।

करिष्य+म्+आन इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन हुआ। करिष्यमान इस अवस्था प्रत्यय सम्बन्धी नकार को णकार आदेश तथा स्वादि कार्य होकर करिष्यमाणम् यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु 3/2/134

वृत्ति – क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः प्रत्ययास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः।

सूत्रार्थ – इस सूत्र से लेकर आगे क्विप् प्रत्यय (3.2.177) तक जो प्रत्यय कहे जायेंगे वे सब तच्छील, तद्धर्म और तत्साधुकारी कर्ता के अर्थ में होते हैं।

व्याख्या – यह अधिकार सूत्र है। इस सूत्र से प्रत्ययार्थ का अधिकार जाता है। इस सूत्र में आ यह अव्यय पद है। क्वेः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु यह सप्तमी बहुवचन का पद है।

इस प्रकार यह सूत्र कहता है कि यद्यपि कृत् प्रत्यय कर्तरि कृत् सूत्र से कर्ता अर्थ में होते है, फिर भी इस सूत्र के अधिकार होने से वे प्रत्यय केवल कर्ता अर्थ में न हो कर तच्छील, तद्धर्म और तत्साधुकारी अर्थ वाले कर्ताओं में ही होंगे अन्य कर्ताओं से नहीं।

तच्छील – उस धातु के अर्थ के स्वभाव वाला।

तद्धर्म – उस धातु के अर्थ के धर्म वाला।

तत्साधुकारी – उस धातु के अर्थ के अनुसार उत्तम कर्म करने वाला।

सूत्र – तृन् 3/2/135

सूत्रार्थ – तच्छील, तद्धर्म और तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में धातु से तृन् प्रत्यय होता है।

उदाहरण – कर्ता कटान्।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में तृन् यह प्रथमा एकवचन का पद है। तृन् प्रत्यय में अन्त्य नकार का अनुबन्धलोप हो जाता है, अतः तृच् के समान ही इस प्रत्यय में भी तृ शेष रहता है।

कर्ता कटान् – (करोति तच्छीलः) कृ धातु से परे तच्छील अर्थ में 'तृन्' सूत्र से तृन् प्रत्यय हुआ। कृतृ न् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अन्त्य नकार का अनुबन्धलोप हुआ। कृ+तृ इस स्थिति में 'आर्धधातुकं शेषः' सूत्र से तृ की आर्धधातुक संज्ञा हुई। आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से इगन्त अङ्ग कृ के ऋकार को गुण व रपर होकर अर् हुआ। क्+अर्+तृ इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन करने से कर्तृ बना। तत्पश्चात् प्रातिदिक संज्ञा और प्रथमा विभक्ति एकवचन में सु प्रत्यय हुआ। इसके बाद ऋकारान्त शब्द सम्बन्धी अन्य कार्य होकर कर्ता यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – जल्प–भिक्ष–कुट्ट–लुण्ट–वृङः षाकन् 3/2/155

सूत्रार्थ – जल्प, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ट और वृङ् धातुओं से तच्छील, तद्धर्म और तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में षाकन् प्रत्यय होता है।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। षाकन् यह प्रथमा एकवचन का पद है।

सूत्र – षः प्रत्ययस्य 1/2/6

वृत्ति – प्रत्ययस्यादिः ष इत्संज्ञः स्यात्।

सूत्रार्थ – प्रत्यय के आदि में विद्यमान जो षकार उसकी इत् संज्ञा होती है।

उदाहरण – जल्पाकः। भिक्षाकः। कुट्टाकः। लुण्टाकः। वराकः। वराकी।

व्याख्या – यह संज्ञा सूत्र है। इस सूत्र में षः यह प्रथमा बहुवचन का पद है। प्रत्ययस्य यह षष्ठी एकवचन का पद है। षाकन् प्रत्यय में आक शेष रहता है। आदि षकार की षः प्रत्ययस्य इस सूत्र से इत् संज्ञा तथा अन्त्य हल् नकार की हलन्त्यम् सूत्र से इत् संज्ञा हो कर तस्य लोपः से लोप होने से आक शेष बचता है।

जल्पाकः – जल्प् (व्यक्तायां वाचि) धातु से परे तच्छीलादि कर्ता अर्थ में 'जल्प–भिक्ष–कुट्ट–लुण्ट–वृङः षाकन्' सूत्र से षाकन् प्रत्यय हुआ। जल्प+षाकन् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी आदिस्थ षकार की 'षः प्रत्ययस्य' सूत्र से इत् संज्ञा हुई तथा 'तस्य लोपः' सूत्र से इत्संज्ञक वर्ण षकार का लोप हुआ तथा अन्य अनुबन्धों का भी लोप हुआ। जल्प्+आक इस स्थिति में स्वादि–उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर जल्पाकः यह रूप सिद्ध हुआ।

भिक्षाकः – भिक्ष् धातु से परे तच्छीलादि कर्ता अर्थ में 'जल्प–भिक्ष–कुट्ट–लुण्ट–वृङः षाकन्' सूत्र से षाकन् प्रत्यय हुआ। भिक्ष्+षाकन् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी आदिस्थ षकार की 'षः प्रत्ययस्य' सूत्र से इत् संज्ञा हुई तथा 'तस्य लोपः' सूत्र से इत्संज्ञक वर्ण षकार का लोप हुआ तथा अन्य अनुबन्धों का भी लोप हुआ। भिक्ष्+आक इस स्थिति में स्वादि–उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर भिक्षाकः यह रूप सिद्ध हुआ।

कुट्टाकः – कुट्ट् धातु से परे तच्छीलादि कर्ता अर्थ में 'जल्प–भिक्ष–कुट्ट–लुण्ट–वृङः षाकन्' सूत्र से षाकन् प्रत्यय हुआ। कुट्ट्+षाकन् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी आदिस्थ षकार की 'षः प्रत्ययस्य' सूत्र से इत् संज्ञा हुई तथा 'तस्य लोपः' सूत्र से इत्संज्ञक वर्ण षकार का लोप हुआ तथा अन्य अनुबन्धों का भी लोप हुआ। कुट्ट्+आक इस स्थिति में स्वादि+उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर कुट्टाकः यह रूप सिद्ध हुआ।

लुण्टाकः – लुण्ट् धातु से परे तच्छीलादि कर्ता अर्थ में 'जल्प–भिक्ष–कुट्ट–लुण्ट–वृङः षाकन्' सूत्र से षाकन् प्रत्यय हुआ। लुण्ट्षाकन् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी आदिस्थ षकार की 'षः प्रत्ययस्य' सूत्र से इत् संज्ञा हुई तथा 'तस्य लोपः' सूत्र से इत्संज्ञक वर्ण षकार का लोप हुआ

तथा अन्य अनुबन्धों का भी लोप हुआ। लुण्ट्आक इस स्थिति में स्वादि–उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर लुण्टाकः यह रूप सिद्ध हुआ।

वराकः – वृ धातु से परे तच्छीलादि कर्ता अर्थ में 'जल्प–भिक्ष–कुट्ट–लुण्ट–वृङः षाकन्' सूत्र से षाकन् प्रत्यय हुआ। वृषाकन् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी आदिस्थ षकार की 'षः प्रत्ययस्य' सूत्र से इत् संज्ञा हुई तथा 'तस्य लोपः' सूत्र से इत्संज्ञक वर्ण षकार का लोप हुआ तथा अन्य अनुबन्धों का भी लोप हुआ। वृ+आक इस स्थिति में आर्धधातुक प्रत्यय परे होने के कारण धातु के ऋकार को गुण हुआ। व्+अर+आक इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन तथा स्वादि कार्य होकर वराकः यह रूप सिद्ध हुआ।

वराकी – वृ धातु से परे तच्छीलादि कर्ता अर्थ में 'जल्प–भिक्ष–कुट्ट–लुण्ट–वृङः षाकन' सूत्र से षाकन् प्रत्यय हुआ। वृ+षाकन् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी आदिस्थ षकार की 'षः प्रत्ययस्य' सूत्र से इत् संज्ञा हुई तथा 'तस्य लोपः' सूत्र से इत्संज्ञक वर्ण षकार का लोप हुआ तथा अन्य अनुबन्धों का भी लोप हुआ। वृ+आक इस स्थिति में आर्धधातुक प्रत्यय परे होने के कारण धातु के ऋकार को गुण हुआ। व्+अर्+आक इस स्थिति में षाकन् प्रत्यय सम्बन्धी आक षित् होने के कारण स्त्रीत्व की विवक्षा में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' सूत्र से ङीप् प्रत्यय हुआ। वराक+ङीप् इस स्थिति में ङीप् के अनुबन्धों का लोप हुआ। वराक+ई इस स्थिति में ईकारादि प्रत्यय के परे रहते 'यस्येति च' सूत्र से ककारोत्तरवर्ती अकार का लोप होकर वराकी बना। तत्पश्चात् स्वादि कार्य होकर वराकी यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – सनाशंसभिक्षः 3/2/168

सूत्रार्थ – सन्नन्त, आ़शंस् और भिक्ष् धातुओं से तच्छील, तद्धर्म और तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में उ प्रत्यय होता है।

उदाहरण – अ चिकीर्षुः। आशंसुः। भिक्षुः।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में सनाशंसभिक्षः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। उः यह प्रथमा एकवचन का पद है।

चिकीर्षुः – कृ (डुकृञ् करणे) धातु का सन्नन्त रूप चिकीर्ष बनता है। इसकी भी धातु संज्ञा होती है। अतः सन्नन्त चिकीर्ष धातु से परे 'सनाशंसभिक्ष उः' सूत्र से तच्छीलादि कर्ता अर्थ में उ प्रत्यय हुआ। चिकीर्ष+उ इस स्थिति में 'अतो लोपः' इस सूत्र से सन् सम्बन्धी अकार का लोप हुआ। चिकीर्ष+उ इस स्थिति में स्वादि–उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर चिकीर्षुः यह रूप सिद्ध हुआ।

आशंसुः – आङ् उपसर्ग पूर्वक शसि (इच्छायाम्) धातु को इदित्त्वाद् नुम् आगम तथा अपदान्त नकार को अनुस्वार होकर आशंस् बना। अतः आशंस् धातु से परे 'सनाशंसभिक्ष उः' सूत्र से तच्छीलादि कर्ता अर्थ में उ प्रत्यय हुआ। आशंस्+उ इस स्थिति में स्वादि–उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर आशंसुः यह रूप सिद्ध हुआ।

भिक्षुः – भिक्ष् (भिक्षायामलाभे लाभे च) धातु से परे 'सनाशंसभिक्ष उः' सूत्र से तच्छीलादि कर्ता अर्थ में उ प्रत्यय हुआ। भिक्ष्+उ इस स्थिति में स्वादि–उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर भिक्षुः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप् 3/2/177

सूत्रार्थ – भ्राज्, भास्, धुर्व, द्युत्, ऊर्ज्, पृ, जु और ग्राव–पूर्वक स्तु धातुओं से तच्छील, तद्धर्म और तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में क्विप् प्रत्यय होता है।

उदाहरण – विभ्राट्। भाः।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। क्विप् यह प्रथमा एकवचन का पद है। क्विप् का सर्वापहारी लोप हो जाता है यह पहले भी बताया जा चुका है। अब प्रश्न यह होता है कि जब प्रत्यय का पूर्ण रूप से लोप ही करना है तो उसका विधान ही क्यों करते हैं? इस प्रश्न का समाधान यह है कि क्विप् प्रत्यय होने से उसका लोप होने बाद भी उसको मान कर धातु कृदन्त हो जाता है। धातु के कृदन्त बन जाने के फलस्वरूप प्रातिपदिक संज्ञा तथा उससे सम्बन्धित अन्य कार्य सम्भव हो जाते हैं। क्विप् प्रत्यय एक कित् (ककार की इत् संज्ञ वाला) प्रत्यय है, अतः कित् को मान कर सम्प्रसारण होता है तथा गुण और वृद्धि का निषेध भी होता है। पित् (पकार के इत्संज्ञक) होने के कारण तुक् आगम भी होता है।

विभ्राट् – वि उपसर्ग पूर्वक भ्राज् धातु से तच्छीलादि कर्ता की विवक्षा होने पर प्रकृत 'भ्राज–भास–धुर्वि–द्युतोर्जि–पृ–जु–ग्रावस्तुवः क्विप्' सूत्र से क्विप् प्रत्यय हुआ। वि+भ्राज्+क्विप् इस स्थिति में प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हुआ। विभ्राज् इस स्थिति स्वादि–उत्पत्ति तथा हलन्त से परे होने से सु का लोप हुआ। वि+भ्राज् में 'भ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः' सूत्र से धातु के जकार को षकार आदेश हुआ। वि+भ्राष् इस स्थिति में 'झलां जशोऽन्ते' इस सूत्र से षकार को डकार हुआ तथा 'वाऽवसाने' से वैकल्पिक चर्त्व होकर डकार को टकार होकर विभ्राट् यह रूप सिद्ध हुआ।

भाः – भास् धातु से तच्छीलादि कर्ता की विवक्षा होने पर प्रकृत 'भ्राज–भास–धुर्वि–द्युतोर्जि–पृ–जु–ग्रावस्तुवः क्विप्' सूत्र से क्विप् प्रत्यय हुआ। भास्+क्विप् इस स्थिति में प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हुआ। भास् इस स्थिति स्वादि–उत्पत्ति तथा हलन्त से परे सु का लोप हुआ। भास् इस अवस्था में अन्त्य सकार को रूत्व विसर्ग होकर भाः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – राल्लोपः 6/4/21

वृत्ति – रेफाच्छ्वोर्लोपः क्वौ झलादौ क्ङिति।

सूत्रार्थ – रेफ से परे छकार और वकार का लोप होता है, यदि क्विप् प्रत्यय परे हो तो अथवा झलादि कित्, ङित् प्रत्यय परे रहते।

उदाहरण – धूः। विद्यूत्। ऊर्क्। पूः। दृशिग्रहणस्यापकर्षाज्जवतेर्दीर्घः। जूः। ग्रावस्तुत्।

व्याख्या – यह लोप विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में राः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। लोपः यह प्रथमा एकवचन का पद है।

–

धूः – धुर्व् (हिंसायाम्) धातु से परे तच्छीलादि कर्ता की विवक्षा होने पर प्रकृत 'भ्राज–भास–धुर्वि–द्युतोर्जि–पृ–जु–ग्रावस्तुवः क्विप' सूत्र से क्विप् प्रत्यय हुआ। धुर्व+क्विप् इस स्थिति में प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हुआ। धुर्व् इस स्थिति में 'राल्लोपः' सूत्र से रेफ से परे वकार का लोप हुआ। धुर् इस स्थिति में स्वादि–उत्पत्ति तथा हलन्त से परे सु का लोप हुआ। धुर् इस अवस्था में 'र्वोरुपधाया दीर्घ इकः' सूत्र से उपधा में विद्यमान उकार को दीर्घ ऊकार हुआ। धूर् स्थिति में अन्त्य रकार को विसर्ग होकर धूः यह रूप सिद्ध हुआ।

विद्युत् – वि उपसर्ग पूर्वक द्युत् धातु से परे तच्छीलादि कर्ता की विवक्षा होने पर प्रकृत 'भ्राज–भास–धुर्वि–द्युतोर्जि–पृ–जु–ग्रावस्तुवः क्विप्' सूत्र से क्विप् प्रत्यय हुआ। भास्+क्विप् इस स्थिति में प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हुआ। वि+द्युत् इस स्थिति में स्वादि–उत्पत्ति तथा हलन्त से परे सु का लोप होने के कारण लोप होकर विद्युत् यह रूप सिद्ध हुआ।

ऊर्क् – ऊर्ज् धातु से परे तच्छीलादि कर्ता की विवक्षा होने पर प्रकृत 'भ्राज–भास–धुर्वि–द्युतोर्जि–पृ–जु–ग्रावस्तुवः क्विप् सूत्र से क्विप् प्रत्यय हुआ। ऊर्ज्+क्विप् इस स्थिति में प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हुआ। ऊर्ज् इस स्थिति में स्वादि–उत्पत्ति तथा हलन्त से परे सु का लोप हुआ। उर्ज् इस स्थिति में जकार को कुत्व तथा चर्त्व होकर ऊर्क् यह रूप सिद्ध हुआ।

पूः – पृ (पालनपूरणयोः) धातु से परे तच्छीलादि कर्ता की विवक्षा होने पर प्रकृत 'भ्राज–भास–धुर्वि–द्युतोर्जि–पृ–जु–ग्रावस्तुवः क्विप्' सूत्र से क्विप् प्रत्यय हुआ। पृ+क्विप् इस स्थिति में प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हुआ। पृ इस स्थिति में 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' सूत्र से ऋकार को उत्व रपर होकर हुआ। पुर् इस स्थिति में स्वादि–उत्पत्ति तथा हलन्त से परे सु का लोप हुआ। पुर् इस स्थिति में 'र्वोरुपधाया दीर्घ इकः' सूत्र से उपधा में विद्यमान उकार को दीर्घ हुआ। पूर् इस अवस्था में अन्त्य रकार को विसर्ग होकर पूः यह रूप सिद्ध हुआ।

जूः – जु धातु पाठ में न होने के कारण इसे सौत्र माना जाता है। अतः जु धातु से परे तच्छीलादि कर्ता की विवक्षा होने पर प्रकृत 'भ्राज–भास–धुर्वि–द्युतोर्जि–पृ–जु–ग्रावस्तुवः क्विप्' सूत्र से क्विप् प्रत्यय हुआ। जु+क्विप् इस स्थिति में प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हुआ। उकार को निपातनात् दीर्घ हुआ। जू इस अवस्था में स्वादि कार्य होकर जूः यह रूप सिद्ध हुआ।

वार्तिक – क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च।

अर्थ – वच्, प्रच्छ्, आयत पूर्वक स्तु, कट पूर्वक प्रु, जु और श्रि इन छः धातुओं से तच्छील, तद्धर्म और तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में क्विप् प्रत्यय होता है साथ ही इन धातुओं को दीर्घ होता है और सम्प्रसारण का अभाव भी होता है।

वक्तीति वाक् – वच् धातु से परे प्रकृत 'क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च' वार्तिक से क्विप् प्रत्यय हुआ तथा धातु के अकार को दीर्घ आकार भी हुआ। वाच्+क्विप् इस स्थिति में क्विप् प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हुआ। वाच् इस स्थिति में अन्य स्वादि कार्य होकर वाक् यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – च्छ्वोः शूडनुनासिके च 6/4/8

वृत्ति – सतुक्कस्य छस्य वस्य च क्रमात् श् ऊठ् इत्यादेशौ स्तोऽनुनासिके क्वौ झलादौ च क्ङिति।

सूत्रार्थ – अनुनासिक हो आदि में जिसके ऐसे प्रत्यय, क्विप् प्रत्यय और झलादि कित् ङित् प्रत्यय में से कोई परे हो तो तुक् सहित छकार के स्थान पर श् आदेश होता है तथा वकार के स्थान पर ऊठ् आदेश होता है।

उदाहरण – पृच्छतीति प्राट्। आयतं स्तौतीति आयतस्तूः। कटं प्रवते कटप्रूः। श्रयति हरिं श्रीः।

व्याख्या – यह विधि सूत्र है। इस सूत्र में च्छ्वोः यह षष्ठी एकवचन का पद है। शूड् यह प्रथमा एकवचन का पद है। अनुनासिके यह सप्तमी एकवचन का पद है। च यह अव्यय पद है।

पृच्छतीति प्राट् – प्रच्छ् धातु से परे प्रकृत 'क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च' वार्तिक से क्विप् प्रत्यय हुआ तथा धातु के अकार को दीर्घ आकार भी हुआ। प्रच्छ्+क्विप् इस स्थिति में क्विप् प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हुआ। प्राच्छ् इस स्थिति में 'च्छ्वोः शूडनुनासिके च' इस सूत्र से क्विप् प्रत्यय का स्थानिवद्भाव मान कर धातु के च्छ् के स्थान में श् आदेश हुआ। प्राश् इस स्थिति में अन्य स्वादि कार्य होकर प्राट् यह रूप सिद्ध हुआ।

आयतं स्तौतीति आयतस्तूः – आयत इस कर्म के उपपद में रहते स्तु धातु से परे प्रकृत 'क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकट–प्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च' वार्तिक से क्विप् प्रत्यय हुआ तथा धातु के उकार को दीर्घ ऊकार भी हुआ। आयत+स्तू+क्विप् इस स्थिति में क्विप् प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हुआ। आयत+स्तू इस स्थिति में अन्य स्वादि कार्य होकर आयतस्तूः यह रूप सिद्ध हुआ।

कटं प्रवते कटप्रूः – कट कर्म के उपपद में रहते प्रु धातु से परे प्रकृत 'क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च' वार्तिक से क्विप् प्रत्यय हुआ तथा

धातु के उकार को दीर्घ ऊकार भी हुआ। कट+प्रू+क्विप् इस स्थिति में क्विप् प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हुआ। कट+प्रू इस स्थिति में अन्य स्वादि कार्य होकर कटप्रूः यह रूप सिद्ध हुआ।

श्रयति हरिं श्रीः – श्रि (श्रिञ् सेवायाम्) धातु से परे प्रकृत 'क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च' वार्तिक से क्विप् प्रत्यय हुआ तथा धातु के इकार को दीर्घ ईकार भी हुआ। श्री+क्विप् इस स्थिति में क्विप् प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हुआ। श्री इस स्थिति में अन्य स्वादि कार्य होकर श्रीः यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – दाम्–नी–शस–यु–युज–स्तु–तुद–सि–सिच–मिह–पत–दश–नहः करणे 3/2/182

वृत्ति – दाबादेः ष्ट्रन् स्यात् करणेऽर्थे।

सूत्रार्थ – दाप्, नी, शस्, यु, युज्, स्तु, तुद्, सि, सिच्, मिह्, पत्, दंश्, नह, इन धातुओं से परे करण अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्यय होता है।

उदाहरण – दात्यनेन दात्रम्। नेत्रम्।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। करणे यह सप्तमी एकवचन का पद है। ष्ट्रन् प्रत्यय में शेष त्र रहता है। आदि में स्थिति षकार तथा अन्त्य नकार का अनुबन्ध लोप हो जाता है। षकार के कारण ही ष्टुत्व सन्धि होने से त् को ट् हुआ था। अतः जब षकार का लोप हो जाता है तो ट् स्वतः त् में परिवर्तित हो जाता है।

दात्यनेन दात्रम् – दा (दाप् लवने) धातु से परे करण कारक की विवक्षा में 'दाम्–नी–शस–यु–युज–स्तु–तुद–सि–सिच–मिह–पत–दश–नहः करणे' इस सूत्र से ष्ट्रन् प्रत्यय हुआ। दा+ष्ट्रन् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। दा+त्र इस स्थिति में स्वादि–उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर दात्रम् यह रूप सिद्ध हुआ।

नीयतेऽनेनेति नेत्रम् – नी (णीञ् प्रापणे) धातु से परे करण कारक की विवक्षा में 'दाम्–नी–शस–यु–युज–स्तु–तुद–सि–सिच–मिह–पत–दश–नहः करणे' इस सूत्र से ष्ट्रन् प्रत्यय हुआ। नी+ष्ट्रन् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। नी+त्र इस स्थिति में आर्धधातुक प्रत्यय परे होने के कारण धातु के ईकार को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से गुण होकर एकार हुआ। नेत्र इस स्थिति में स्वादि–उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर नेत्रम् यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च 7/2/9

वृत्ति – एषां दशानां कृत्प्रत्ययानामिण् न।

सूत्रार्थ – ति, तु, त्र, त, थ, सि, सु, सर, क और स इन कृत्प्रत्ययों को इट् का आगम नहीं होता।

उदाहरण – शस्त्रम्। योत्रम्। योक्त्रम्। स्तोत्रम्। तोत्रम्। सेत्रम्। सेक्त्रम्। मेढ्रम्। पत्रम्। दंष्ट्रा। नद्ध्री।

व्याख्या – यह निषेधात्मक विधि सूत्र है। इस सूत्र में तितुत्रतथसिसुसरकसेषु यह सप्तमी एकवचन का पद है। च यह अव्यय पद है।

शसति (हिनस्ति) अनेनेति शस्त्रम् – शस् (शसु हिंसायाम्) धातु से परे करण कारक की विवक्षा में 'दाम्–नी–शस–यु–युज–स्तु–तुद–सि–सिच–मिह–पत–दश–नहः करणे' इस सूत्र से ष्ट्रन् प्रत्यय हुआ। शस्+ष्ट्रन् इस स्थिति में प्रत्यय सम्बन्धी अनुबन्धों का लोप हुआ। शस्त्र इस स्थिति में वलादि आर्धधातुक प्रत्यय परे होने के कारण 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' इस सूत्र से इट् आगम प्राप्त था परन्तु उसका 'तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च' सूत्र से निषेध हो गया। शस्त्र इस स्थिति में स्वादि–उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर शस्त्रम् यह रूप सिद्ध हुआ।

सूत्र – अर्ति–लू–धू–सू–खन–सह–चर इत्रः 3/2/184

सूत्रार्थ – ऋ, लू, धू, सू, खन्, सह् और चर् धातुओं से करण अर्थ में इत्र प्रत्यय होता है।

उदाहरण – अरित्रम्। लवित्रम्। धुवित्रम्। सवित्रम्। खनित्रम्। सहित्रम्। चरित्रम्।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में अर्तिलूधूसूखनसहचरः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। इत्रः यह प्रथमा एकवचन का पद है।

अरित्रम् – ऋ (गतिप्रापणयोः) धातु से परे 'अर्ति–लू–धू–सू–खन–सह–चर इत्रः' इस सूत्र से इत्र प्रत्यय हुआ। ऋ+इत्र इस स्थिति में इत्र की आर्धधातुक संज्ञा होने के कारण 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से ऋ को गुण रपर होकर अर् हुआ। अर्+इत्र इस स्थिति में स्वादि– उत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी कार्य होकर अरित्रम् यह रूप सिद्ध हुआ।

लवित्रम्। धुवित्रम्। सवित्रम्। खनित्रम्। सहित्रम्। चरित्रम्। इनकी सिद्धि अरित्रम् के समान होती है।

सूत्र – पुवः संज्ञायाम् 3/2/185

सूत्रार्थ – यदि प्रकृति–प्रत्ययसमुदाय से संज्ञा अर्थ निकले तो पू धातु से करण अर्थ में इत्र प्रत्यय होता है।

उदाहरण – पवित्रम्।

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में पुवः यह पञ्चमी एकवचन का पद है। संज्ञायाम् यह सप्तमी एकवचन का पद है।

पवन्ते पुनन्ति वा अनेन पवित्रम् – पू (पूङ् अथवा पूञ्) धातु से परे करण अर्थ में प्रकृत 'पुवः संज्ञायाम्' सूत्र से इत्र प्रत्यय हुआ। पू+इत्र इस स्थिति में इत्र की आर्धधातुक संज्ञा होने के कारण 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से उ को गुण होकर ओ हुआ। पो+इत्र इस स्थिति में ओ को अच् परे रहते 'एचोऽयवायावः' सूत्र से अव् आदेश हुआ। पव्+इत्र इस स्थिति में वर्ण–सम्मेलन तथा स्वादि कार्य होकर पवित्रम् रूप सिद्ध हुआ।

26.3 सारांश

कृदन्त के अन्तर्गत आने वाले पूर्वकृदन्त प्रकरण से सम्बद्ध इस इकाई में आपने शतृ, शानच्, वसु, तृन्, षाकन्, उ, क्विप्, ष्ट्रन् और इत्र इन नौ प्रत्ययों का अध्ययन किया। ये नौ प्रत्यय भी कृदतिङ् इस अधिकार में पढ़े जाने के कारण कृत् संज्ञक कहलाते हैं। जैसा कि हम पूर्व की इकाइयों में पढ़ चुके हैं कि इन प्रत्ययों का कर्तरि कृत् सूत्र द्वारा कर्ता अर्थ में विधान होता है। परन्तु इस इकाई में अर्थ विशेष के कतिपय ऐसे उदाहरण भी दृष्टिगोचर हुए हैं जहाँ वर्तमान कालवाचक लट् लकार एवं भविष्यत् कालवाचक लृट् लकार के स्थान पर प्रत्यय का विधान हो रहा है। इस इकाई के सूत्रों से कर्ता अर्थ के अन्तर्गत तच्छील, तद्धर्म और तत्साधुकारी अर्थ में भी धातु से परे प्रत्ययों का विधान हुआ। इसके अतिरिक्त करणादि अर्थ में भी प्रत्ययों का विधान इस इकाई के अन्तर्गत आपने पढा है।

प्रथम, द्वितीय और तृतीय इकाई में हमारे द्वारा विस्तार पूर्वक पठित वाऽसरूप विधि का उपयोग इस इकाई में भी समान रूप से प्रासंगिक है चतुर्थ इकाई के अपने इस अध्ययन के द्वारा यह भी आप भलीभाँति जान चुके हैं।

26.4 शब्दावली

समानाधिकरण – समानाधिकरण का तात्पर्य एक अथवा समान–विभक्तिक होने से है। जैसे यहाँ लट् लकार उसके स्थान पर विधीयमान प्रत्यय एवं कारक दोनों का अधिकरण अर्थात् वाच्य समान अर्थात् अभिन्न हैं। अतः ये समानाधिकरण माने जाते हैं।

व्यवस्थितविभाषा – जो विकल्प कहीं पर नित्य, कहीं सर्वथा नहीं तथा किन्हीं स्थानों पर दोनों ही प्रकार से प्रवृत्त हो उसे व्यवस्थितविभाषा कहते हैं। वस्तुतः तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार विकल्प की सामान्यतया प्रत्येक स्थान पर प्रवृत्ति और अप्रवृत्ति होकर दो–दो रूप बनते दिखाई देते हैं, उसी प्रकार की प्रवृत्ति व्यवस्थितविभाषा के प्रसंग में नहीं देखी जाती है। व्याकरण परम्परा में व्यवस्थितविभाषा की व्यवस्था तो कहीं नित्य प्रवृत्ति वाली, कहीं नित्य अप्रवृत्ति वाली तथा कहीं उभयविध प्रवृत्ति वाली स्वीकार की जाती है। इस संदर्भ में यह बात भी विशेष रूप से ध्यातव्य है कि इस व्यवस्थितविभाषा के प्राप्ति का निर्णय शिष्ट प्रयोगों पर ही पूर्णतया आश्रित हुआ करता है किसी यदृक्षा पर नहीं।

सर्वापहारी लोप – जिस प्रत्यय के सभी वर्णों की इत् संज्ञा होकर उनका लोप हो जाता है। उस लोप को सर्वापहारी लोप कहा जाता है।

तच्छील कर्ता – फल की अपेक्षा किये विना अपने शील अर्थात् स्वभाव के अनुसार क्रिया का सम्पादन करने वाला तच्छील कर्ता कहलाता है।

तद्धर्मा कर्ता – शील अथवा स्वभाव न होने पर भी क्रिया को अपने कुल का आचार मानकर सम्पादित करने वाला तद्धर्मा कर्ता कहलाता है।

तत्साधुकारी कर्ता – शील अथवा कुलाचार न होने पर भी क्रिया को उत्तम प्रकार से सम्पादित करने वाला तत्साधुकारी कर्ता कहा जाता है।

26.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी, गोरखपुर,ः गीताप्रेस।
2. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या गोविन्दाचार्य, लघुसिद्धान्तकौमुद,. दिल्लीः चौखम्भा सुरभारती।
3. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, धरानन्द, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्लीः मोतीलाल बनारसी दास।
4. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, भीमसेन, लघुसिद्धान्तकौमुदी, (भाग–1–6), दिल्लीः भैमी प्रकाशन।
5. शास्त्री, चारुदेव, व्याकरण चन्द्रोदय. (भाग–1–3), दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास।
6. वरदराजाचार्य, सम्पा. एवं हिन्दी, सिंह, सत्यपाल. लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्लीः शिवालिक पब्लिकेशन।
7. Apte, V.S. The Students, Guide to Sanskrit Composition, Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.
8. Kale, M.R. Higher Sanskrit Grammar, MLBD, Delhi.
9. Kanshi Ram, Laghusiddhantkaumudi, (Vol. 1&3), MLBD, Delhi, 2009.
10. Ballantyne, James R. Laghusiddhantkaumudi, Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi

26.6 अभ्यास प्रश्न

1. शतृ और शानच् प्रत्यय में क्या अन्तर है?
2. शतृ प्रत्यय किन धातुओं से विहित होता है?

3. शानच् प्रत्यय विधान के लिए क्या क्या निमित्त हैं?
4. तृन् प्रत्यय किस अर्थ में होता है?
5. वसु प्रत्यय किस के स्थान पर होता है?
6. लिटः कानज्वा और क्वसुश्च इन दो सूत्रों को उदाहरण के साथ स्पष्ट करें।
7. पचन्तम् और पचमानम् की रूप सिद्धि कीजिए।
8. कर्ता पद की रूपसिद्धि कीजिए।
9. चिकीर्षुः में कौन सा प्रत्यय है? ससूत्र स्पष्ट कीजिए